UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186335

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. R H80.5 Accession No. P.G.H 3432

Author A31-

Title अजन्ता

This book should be returned on or before the date last marked below.

टेलीफोन नं. १२९ —: अद्भुत [illegible] [illegible]”

नीस चालीस वर्ष पहले तक बेतार का तार गप्प या जादू मा [illegible] समझते. सुनते और समझते हैं कि वह केवल एक वैज्ञानिक यन्त्र है। इसी तरह हमारे भी यह नीचे बताए यन्त्र हैं जो सब सच्चे हैं और बिना किसी मेहनत-परेशानी कौड़ियों के खर्च पर आपको न सिर्फ़ लखपति बना देंगे बल्कि हर समाज में आपको मान-प्रतिष्ठा दिलाएँगे। जादू सम्राट् का सम्मान राजा से कम नहीं होता। यह सब शो घर बैठे ही केवल एक दिन में सहज ही सीखे जा सकते हैं और फिर दूसरे ही दिन कहीं भी कभी भी दिखाए जा सकते हैं। कोई सिद्धि कोई जप नहीं करना पड़ता। प्रत्येक शो में वर्षों तक [illegible] वाला उसका पूरा बना बनाया तैयार सेट, उसकी सरल और पूरी विधि सहित भेजा जाता है।

* **मैजिक बक्स :** इस बक्स में ताश का पत्ता जला कर डाल देने से फिर खोल कर देखने पर वह पत्ता सही और साबुत निकलेगा। सादा कागज जला कर डालने पर, नोट और रुपया डालने पर एक बार वह गायब हो जाएगा और दूसरी बार मिल जाएगा। मूल्य २)।

* **मैजिक फ़नेल :** इसको स्त्री ही नहीं, किसी पुरुष की भी देह से छुआते ही इसमें से दूध की धारा निकलने लगेगी और इसको हटाते ही धारा निकलना बन्द हो जाएगी। मूल्य २॥)

मैजिक गेंद : यह रंग-बिरंगी गेंद सूत की डोर में पिरोई हुई है। आपके आदेश पर यह चलेगी-दौड़ेगी और रुकेगी। मूल्य १॥)

* **तिरलोचनी :** इस छोटी-सी लकड़ी में तीन छेद हैं। किसी से, बीच के छेद में सींक डालने को कहने पर वह सींक को सिरेवाले छेद में ही डालेगा। मूल्य १)

* **कागज़ से नोट :** सादे कागज को जला कर उसकी राख से सबके देखते-देखते नोट बना देना। मूल्य १)।

* **मैजिक मिस्ट्रीज़ :** इसके द्वारा अपनी आँखों पर पट्टी बंधवा कर आप लिख सकते हैं, पढ़ सकते हैं और मोटर साइकिल चला सकते हैं। बहुत बड़ा जादूगर जब किसी नगर में जादू-विद्या का प्रदर्शन करता है तो पहले दिन अपनी आँखों पर पट्टी बँधवा कर इसी के द्वारा मोटर साइकिल से नगर के प्रमुख मार्गों पर चल कर सहज ही नागरिकों पर अपना प्रभाव जमा देता है। मूल्य ५)।

* **तिब्बत का बक्स :** किसी दर्शक की घड़ी इस बक्स में उसी से रखवा कर और ताला लगवा कर बक्स उसी को दे दिया जाता है। परन्तु फिर ताला खोल कर देखने पर उसमें घड़ी नहीं मिलती। वह दूर मेज़ पर रखी डबल रोटी के काटने पर उसके अन्दर से निकलती है। मूल्य ३॥)।

* **विचित्र गोला :** यह एक ठोस रंगीन गोला सबके सामने देखते-देखते हाथ ही हाथ में एक से [illegible] फिर तीन और फिर चार बन जाते हैं। इसके बाद चार के तीन, दो और अन्त में एक रह जाता है। मूल्य ३)

* **मास्टर मैजिक :** सबके सामने दर्शक के हाथ में से अँगूठी उड़ कर दूर रखे गिलास में पहुँच जाती है और फिर वहाँ से भी गायब हो कर डबल रोटी के अन्दर से निकलती है। मूल्य ३॥)।

* **ताश का पूरा सेट :** ताश के नवीन चमत्कार के इस पूरे सेट द्वारा आप ताश के बीसों खेल दिखा कर धुरन्धर विद्वानों को भी चक्कर और हैरत में डाल देंगे। मूल्य ११)।

* **मैजिक सिगरेट :** हवा में से दर्जनों असली सिगरेटें पकड़ लेना और चाहते ही तुरन्त सबको हवा में उड़ा देना। मूल्य २॥)।

* [illegible] **मैस्मेरेजम** [illegible] लड़के को ज़मीन पर लिटा कर [illegible] ढक कर [illegible] बेहोशी के हालत में उससे सारे दर्शकों के अजीब-गरीब प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठीक बता देने का गुप्त रहस्य इस कोर्स द्वारा आप घर बैठे ही केवल एक दिन में सीख जाएँगे और फिर आप दूसरे ही दिन अपने आपको "मेस्मेरिस्ट" प्रसिद्ध कर सहज ही धन-मान और यश प्राप्त कर सकेंगे। फ़ीस ३)

नोट :—(१) पाँच रुपए से कम का माल नहीं भेजा जाता है। (२) माल की कम-से-कम चौथाई क़ीमत पहले आनी चाहिए।

१४३, यूनाइटेड मैजिक कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, मुरादाबाद.

'अजन्ता'
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी, नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार, एम. पी.
मुकर्रमजाही मार्केट, हैदराबाद-द.

डा० भगवतशरण उपाध्याय
४-ए, थार्न हिल रोड,
इलाहाबाद.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त
सचिव चिकित्सा-विभाग, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुखर्जी
प्रिन्सिपाल, कालेज ऑफ आर्ट्स, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य
डाइरेक्टर, पुरातत्व-विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक, दैनिक उर्दू व हिन्दी 'मिलाप' हैदराबाद

'अजन्ता'

हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश)

विज्ञापन दर

आवरण पृष्ठ संख्या २ अन्तिम	१२५ रु०	प्रति मास
,, पृष्ठ संख्या ३	९० रु०	,,
,, पृष्ठ संख्या ४	९० रु०	,,
भीतरी प्रथम पृष्ठ	७५ रु०	,,
साधारण भीतरी पृष्ठ	६० रु०	,,
,, आधा ,,	३० रु०	,,
,, चौथाई ,,	१५ रु०	,,

वर्ष भर के लिए विज्ञापन देने पर २० प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा।
छः मास के लिए विज्ञापन देने पर १५ प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा।
तीन मास के लिए विज्ञापन देने पर १० प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा।

'अजन्ता' में विज्ञापन दे कर लाभ उठाइए।

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ११ जनवरी, १९५९ अङ्क १

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड

सचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-दक्षिण

तार : 'हिन्दी' फ़ोन : ३४३५०

सौराष्ट्र, बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्य-प्रदेश, आन्ध्र-प्रदेश, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत

अनुक्रम

हे चिर नूतन !
व्योहार राजेन्द्र सिंह १

जीवन-गीत
राजेन्द्र 'मिलन' २

गीत
चक्रधर 'नलिन' ३

आदमी, शराब और गिलास
हरिनारायण 'विद्रोही' ४

पुरुष
नटवरलाल 'स्नेही' ५

जिस आँगन नहीं प्यार के आँसू बिखरे
चन्द्रगुप्त मयंक ६

अर्ध-चन्द्रमा (एकांकी)
देवेन्द्र इस्सर ७

बोरिस पास्टर नैक
भोलानाथ चतुर्वेदी १८

कौशाम्बी के खण्डहर
बनारसीलाल आर्य २०

उत्तर पूर्वी अफ्रीका के आदिवासी ल. टु. का.
रामसिंह २२

पाणिनि की दृष्टि में क्रिया की विभिन्न अवस्थाएँ
रामशंकर भट्टाचार्य २६

प्राचीन परम्परा-नवीन प्रवृत्तियाँ
अनु. भीमसेन 'निर्मल' २९

"ओ अप्रस्तुत मन !" भारतभूषण अग्रवाल की नयी काव्य कृति
नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी ३२

आधुनिक बंगला उपन्यासों का एक संक्षिप्त परिचय
प्रबोध कुमार मजूमदार ३७

कांग्रेस का ६४ वां अधिवेशन : एक अध्ययन
मुकुर ४१

हर्ष और उल्लास के अक्षय स्त्रोत : राजस्थानी लोक-गीत
जुगमन्दिर तापल ४४

सती मयना ओ लोर चन्द्राणी
डॉ. रमानाथ त्रिपाठी ४७

छपरा का पोखरा (रेखाचित्र)
विश्वमित्र उपाध्याय ५२

घुँघरू
प्रीतमसिंह 'पंछी' ५५

कला-चर्चा ५९
हिमाचल चित्र शैली का ध्रुव बिन्दु : सुन्दर नारी
रामगोपालाचार्य

चिट्ठी-पत्री ६३
ललिता देवी, चित्तरंजन शर्मा

नीर-क्षीर ६५
भगवद् गीता की बुद्धिवादी समीक्षा, मानस की (रूसी) भूमिका, विचार-तरंग, गीली मिट्टी : वंशीधर विद्यालंकार, राष्ट्रपति और राष्ट्रपति भवन : शारदा बरुआ

सामयिक ७०
कम्बन : तमिल का सर्व श्रेष्ठ कवि, लेखक बनने से पूर्व

सम्पादकीय ७३
डॉ० वंशीधर विद्यालंकार

वार्षिक मूल्य : ९.०० एक प्रति का मूल्य : १.००

वर्ष ११ जनवरी १९५९ अङ्क १

हे चिर नूतन !

हे चिर नूतन ! आज दिवस के प्रथम गान में
जीवन मेरा विकस उठे तव प्रान प्रान में
तव वाणी की सीमाहीन सुआशा
चिर दिवसों की प्राणमयी परिभाषा
अक्षय धन भर देना मन में तव हाथों के प्रथम दान में

इस शुभ क्षण जागती गगन में सुप्त वायु है
लाती जीवन में सुजन्म की अमल आयु है
होवें लीन विवादी स्वर सब तव संवादी स्वर वितान में

जो कुछ जीर्ण शीर्ण है जग में—
हो विलीन वह नूतन मग में—
होवे दूर मलीन, दीन सब नव प्रकाश के पुण्य ध्यान में
हे चिर नूतन ! आज दिवस के प्रथम गान में

(गुरुदेव की कविता के आधार पर)

साठिया कुआँ, जबलपुर —ज्योहार राजेन्द्रसिंह

जीवन-गीत

क्या सुनाऊँ कुछ नया मुझ पर नहीं है
ढल गई है कल्पनाओं की जवानी
दूर ले चल कुछ मुझे भाता नहीं है
बन गई है ज़िन्दगी मेरी कहानी

याद में मन, साधना में तन, किसी की
ज़िन्दगी की सब हवस सन्यासिनी हैं
चाहतें हैं कुछ किसी की नज़र भर से
आदतें उनकी बड़ी मन-भावनी हैं
शेष व्याकुल है मिलन की कर्म-गीता
और मिटती जा रही हैं सब निशानी

खो गया मोहन, हुई राधा वियोगिन
ग़म भरे तूफ़ान मन में चल रहे हैं
दूत बन कर ले चले सन्देश किसका
यत्न के बादल दृगों को खल रहे हैं
कब भला सुधि लायँगी पतियाँ किसी का
झर चली है उम्र की बरखा सुहानी

कौन ये दुल्हन चली छम छम सुहागिन
कौन विधवा होगई भर पूर सावन
गा रहा है कौन भीना मस्त फागुन
धो रहा है कौन अँसुओं से दुखी मन
कौन सेजों पर बिताता है उमरिया
ढो रहा है कौन बेबस ज़िन्दगानी

खेत का राजा कहीं रानी फ़सल की
भार लेकर मेंड़ पर प्यासी तपन का
उड़ रहा पुरवाइ में मदहोश चूनर
गा उठा है गीत कोई मधु-मिलन का
कब न जाने स्वप्न मेरे पूर्ण होंगे
पड़ चली है ओढ़नी तनकी पुरानी

२१७२, माईथान
आगरा

राजेन्द्र 'मिलन'

गीत

मेरे मन का राजा मुझ से बोल रहा—
आम तले गाओ जीवन का गीत मधुर !

जीवन फैला अम्बर सा विस्तृत है—
नयनों में नयनों के मीत मिले,
वासन्ती समीर के झोंके से लय हो—
आगत की कलियों के रूप खिले
प्यासे मन के हेतु एक ही बूँद बहुत—
क्रय-विक्रय का क्रम लगता है जीवन भर !
आम तले गाओ जीवन का गीत मधुर !

महक रहे हैं अधर गूँजते कोयल स्वर,
शिव साधक के द्वार बहा सुख का निर्झर,
दिखता निज नयनों का नहीं लगा काजल,
प्यास नहीं बुझती इंगित है क्यों बादल,
लिख-लिख आमन्त्रण विश्वासों के कर से—
भेजे, आये नहीं कभी फूलों के घर !
आम तले गाओ जीवन का गीत मधुर !

जो मिलता है, वही मिला क्या हुआ बहुत,
जय की चाह पराजय से नित रही रहित,
लहरों की गति से—इच्छाओं के प्रति शर,
भावों की गंगा में बहने दो अन्तर,
माटी का जीवन यह एक खिलौना है —
सजा दिया है मतवाले ने विविध रंग भर !

हरिसदन,
गान्धीद्वार, झाँसी, उ. प्र. भारत

—चक्रधर नलिन

आदमी-शराब और गिलास

बहुत दिन पहले,

किसी आदमी ने ठीक कहा था,
कि पहले आदमी शराब को पीता है,
लाल शराब की तरह,
लस्सी की तरह,
और बाद में,
शराब,

होटल के उस मालिक की तरह,
जिसे अपनी चाय के दाम नहीं देना है,
धीरे-धीरे आदमी को पी जाती है,
और तब,

आदमी का खोखला ढाँचा,
जमीन पर खाली गिलास-सा पड़ा रह जाता है

२१८, डरु भोंड़ला,
झाँसी (उत्तर प्रदेश)

—हरिनारायण "विद्रोही"

पुरुष

मृदुल फूल की माधुरी चाहता पर
किसी शूल की, मैं चुभन से न डरता
पुरुष है वही जो कि पुरुषार्थ करता

विदित है जगत की विजय कामना को
तपस्या सुखों की सु-माता बनी है,
विदित है, दुसह ग्रीष्म का ताप ही तो
सजल मेघ-दल की मृदुल रागिनी है

अपेक्षित जहाँ पर पसीना बहाना,
वहाँ आँसुओं का न मैं नीर झरता
पुरुष है वही जो कि पुरुषार्थ करता

अनल स्नान में जो न पाए सफलता,
गगन, भूमि को बिन्दु पानी न देता,
समर-भूमि में मृत्यु से जी चुरा कर
न इच्छुक, कहाऊँ जगत का विजेता

मुझे मोतियों की क्षुधा जब सताए,
अतल सङ्कटों के अतल में उतरता
पुरुष है वही जो कि पुरुषार्थ करता

नहीं चाहता, भव्य प्रासाद में मैं-
रहूँ बैठ, खेती खुली लहलहाए,
नहीं चाहता मैं, भगीरथ-तपस्या-
बिना, पुण्य भागीरथी मुक्ति लाए

मुझे याद है धार का दर्प दलना
विजय का कलश कूल पर मैं न भरता
पुरुष है वही जो कि पुरुषार्थ करता

भरोसा करों की क्रिया-शक्ति पर है,
कृपा की किरण याचने मैं न जाता,
भले ही करे प्राण का धन विसर्जन,
मृतक मृग-शवों को न मृगराज खाता

"तिमिर में मुझे पंथ दो" यह दिवाकर
निविड़तम निशा से निवेदन न करते
पुरुष है वही जो कि पुरुषार्थ करता

पर्णकुटी,
नागदा जं. (म. प्र.)

नटवर लाल 'स्नेही'

जिस आँगन नहीं प्यार के आँसू बिखरे

जिस धरती पर नहीं बजाई बंशी कान्हा ने,
जिस आँगन को नहीं संवारा कभी किसी राधा ने,
उस आँगन मत मेरे हृदय भड़कना तुम

जिस धरती पर नहीं मनुज सुख से विचरे,
जिस आँगन नहीं प्यार के आँसू बिखरे,
उस आगन मत मेरे मेघ बरसना तुम

जिस मन्दिर में नहीं गीत मीरा ने गाए,
जिस द्वारे नहीं कभी गीत सूरा ने गाए,
उस मन्दिर मत मेरे देव ठहरना तुम

जिस दूबा के अधर न चूमें हो शबनम ने,
जिस कलिका पर नहीं लुटाया जीवन वन ने,
उस उपवन मत मेरे मेघ थिरकना तुम

जिस आँगन नहीं प्यार के आँसू बिखरे,
उस आँगन मत मेरे मेघ बरसना तुम

आगर छावनी,
मध्य प्रदेश

—चन्द्रगुप्त मयंक

अर्ध–चन्द्रमा

पात्र

राजन

प्रीतकला

रूप ज्योति

चित्रलेखा

स्वर्ण बाला

प्रदीप

राजन : (क्षय रोगी की तरह खाँसते हुए) कला! प्रीतकला! (अपने आप से) रात बहुत बीत गई है। ना जाने वह अभी तक क्यों वापस नहीं लौटी। (ज़ोर से आवाज लगाते हुए) कला! प्रीतकला। (अपने आप से) कह रही थी। शायद वह देर से लौटे। लेकिन.....। (बाहर किसी के पाँव की चाप सुनाई देती है)

राजन : तुम आ गई प्रीतकला (खाँसता है) (दरवाजा खुलने की आवाज)

राजन : बहुत देर मे लौटी हो। शायद ढाई बजे होंगे।

प्रीतकला : हाँ बाबा। देर हो गई। तुम अभी तक सोए नहीं। (राजन खाँसता है) तुम सो जाते बाबा? अधिक जागने से.....।

राजन : (बात काटते हुए) नींद नहीं आई। तुम इतनी देर से.....

प्रीतकला : (बात काटते हुए) हाँ बाबा। देर हो गई। आज शरद् पूर्णिमा है। कितनी सुन्दर है आज की रात। खिड़की खोल दूं बाबा। देखो तो बाहर चाँद जैसे पागल हो गया है। अनजाने में चाँदनी लुटा रहा है। (खिड़की खुलने की आवाज)

राजन : खिड़की बन्द कर दो। हवा बहुत ठण्डी है। (खाँसता है) (खिड़की बन्द होने की आवाज)

राजन : शरद् पूर्णिमा की रात। मगर इस रोग ने.....(रुक जाता है)

प्रीतकला : तुम ने दवा पी ली बाबा?

राजन : दवा (खाँसता है) अब दवा से कुछ न होगा।

प्रीतकला : ऐसा न कहो बाबा।

राजन . इस चाँदनी में तुम लोग कहाँ-कहाँ घूमे?

प्रीतकला : बहुत देर तक इधर उधर घूमते रहे, फिर झील के किनारे बैठ गए। ऐसा मालूम होता था कि एक आकाश ऊपर है और एक आकाश नीचे। प्रदीप कहता था, आज की रात.....(रुक जाती है)

राजन : हाँ आज की रात...प्रदीप क्या कहता था?

प्रीतकला : कुछ नहीं बाबा। आज उसने बड़ा ही मधुर गीत सुनाया। बाबा प्रदीप कवि हो गया है। (खोई हुई आवाज में) शरद् पूर्णिमा की रात और मधुर गीत। (हौले हौले गुनगुनाने लगती है)

राजन : (धीरे धीरे दुहराते हुए) शरद् पूर्णिमा की रात और मधुर गीत। खिड़की भी खोल दो कला चाँदनी कब से दस्तक दे रही है।

प्रीतकला : बाहर बहुत ठण्डी हवा है।

राजन : चाँदनी में घुली हुई तो है। (खाँसता है)

प्रीतकला : कम्बल ठीक तरह से ओढ़ लो सरदी हो रही है।

राजन : तुम ने शाल नहीं ओढ़ रखा।

प्रीतकला : शाल ओह.....वह तो मैं कहीं भूल आई। शायद प्रदीप के पास ही रह गया है। कई बार मुझे ओढ़ा देता था जैसे सरदी मुझे ही लग रही थी। कहता था मुझे सरदी नहीं लगती।

राजन : अच्छा कुछ ओढ़ लो।

प्रीतकला : कुछ अधिक सरदी तो नहीं। (प्रीतकला किसी वस्तु से टकराती है)

राजन : क्या है कला?

प्रीतकला : तुम्हारा नया चित्र अभी तक पूरा नहीं हुआ?

राजन : तुम्हारे जाने के बाद मैं बहुत देर तक इस में रंग भरता रहा। जब बहुत थक गया तो छोड़ दिया। न जाने कब से अधूरा पड़ा है लेकिन... (खाँसता है)

प्रीतकला : आज तुम्हें खाँसी बहुत आ रही है

बाबा । जरूर तुम्हें चित्र बनाते हवा लग गई है ।

राजन : लेकिन चित्र आज भी पूरा नहीं हो सका। मुझे यों लगता है, जैसे अब यह चित्र कभी पूरा नहीं होगा।

प्रीतकला : नहीं बाबा, तुम जल्द ही अच्छे हो जाओगे।

राजन : (निराशा से हँसता है) लेकिन चित्र फिर भी अधूरा ही रहेगा। न जाने क्यों आजकल मुझे .....खैर छोड़ो इन बातों को.....प्रदीप का क्या हाल है ?

प्रीतकला : वह कह रहा था—जब उसे काम मिल जायगा तो वह तुम्हें, हम दोनों को कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर भेज देगा।

राजन : क्या उसे काम मिल रहा है ?

प्रीतकला : कह तो रहा था।

राजन : लेकिन अब मैं बाहर नहीं जा सकूँगा। बहुत घूम लिया। घूम घूम के कुछ थक सा गया हूँ। और अब तो..... ।

प्रीतकला : वह कह रहा था कि बाबा ठीक हो सकते हैं।

राजन : ठीक ही तो कहता है। पगली कभी .....(खाँसता है)

प्रीतकला : वह कहा रहा था कि उसके एक डाक्टर मित्र जल्द ही तबदील होकर मसूरी जा रहे हैं। तुम्हें कुछ दिन आराम के लिए वहाँ ले जायगा।

राजन : (हंसते हुए) तुम दोनों पागल हो। शरद् पूर्णिमा की रात को एक रोगी के बारे में बातें करके समय बिताते रहे। चांदनी रात को एक रोगी, असफल, टूटे हुए.....

प्रीतकला : (बात काट कर) तुम अपने आप को असफल कहते हो बाबा।

राजन : कभी कभी मैं यही सोचता हूँ, तृप्त में मदहोश, तुम्हारी पायल की आवाज सुनता हूँ। तुम्हारे गीतों की दर्दभरी खुशी महसूस करता हूँ । इन चांदनी रातों में तुम्हारे दिल की धड़कन सुनता हूँ तो महसूस होता है कि मैं इतना असफल (रुक जाता है)

प्रीतकला : प्रदीप कह रहा था—आज उस ने तुम्हारा एक बहुत पुराना चित्र आर्ट गैलरी में देखा है।

राजन : हूँ।

प्रीतकला : वह कह रहा था कि वह बहुत देर तक एक टक उस चित्र की ओर देखता रहा। वह बड़ी प्रशंसा कर रहा था।

राजन : तुम ठीक कहती हो कला । प्रदीप अब चित्रों की भाषा समझने लगा है। चित्र बनाने वाले को चित्र समझने वाले की जरूरत होती है।

प्रीतकला : प्रदीप अब कुछ खोया-सा रहता है। अब भी कहीं घूम रहा होगा। कह रहा था, उसे ऐसी रातों में नींद नहीं आती। चाँदनी उसे पागल बना देती है। बहुत भावुक हो गया है।

राजन : आज चाँदनी वास्तव में पागल बना देने वाली है। काश, काश कि (रुक जाता है)

प्रीतकला : रुक क्यों गए बाबा ?

राजन : मैं सोच रहा था। अगर आज की रात मैं इस चित्र को पूरा कर लेता, कला ! अगर यह चित्र मुझ से पूरा कर न हो सका तो क्या तुम पूरा कर सकोगी ?

प्रीतकला : नहीं बाबा। तुम्हारे सिवा कोई इस चित्र को पूरा नहीं कर सकता। तुम ही इस में रंग, रेखा का यौवन भर सकते हो। सोचती हूँ जब, जब तुम नहीं होगे (गला रुंध जाता है।)

राजन : पगली। जाओ रात बहुत बीत गई है। शायद अब तो प्रभात भी होने वाला है।

प्रीतकला : (जाते हुए तुम भी सो जाओ बाबा न जाने मुझे क्यों ऐसा महसूस होता है कि तुम रात भर जागते रहते हो। (दरवाजा खुलने की आवाज)

प्रीतकला : सो जाना बाबा।

(दरवाजा बन्द होने की आवाज)

(दूसरे कमरे में प्रीतकला के गुनगुनाने की आवाज)

राजन : आज की रात। शरद् पूर्णिमा की रात है। वर्ष की सुन्दरतम रात। बीस वर्ष पहले मुझ पर भी ऐसी ही रात आई थी। बीस वर्ष पहले.....

(फ्लेश बेक)

(रात का समय। झील में चलती हुई नाव की आवाज संगीत ध्वनि)

राजन : देखो चाँद भी हमारे साथ चल रहा है। नाव को और आगे ले चलें। रूप ज्योति, नहीं अब वापस चलो। बहुत देर हो गई, राजन।

राजन : अभी तो केवल दस बजे हैं।

रूप ज्योति : दस बज गए।

राजन : हाँ, केवल दस।

रूप ज्योति : वह तो ठीक है लेकिन मुझे वापस घर भी तो पहुँचना है।

राजन : तो क्या मैं रात भर यहीं रहूँगा।

रूप ज्योति : तुम्हें मज़ाक सूझ रहा है। बहुत रात हो गई है।

राजन : तो क्या हुआ। कुछ देर और सही। आख़िर घर ही तो जाना है।

रूप ज्योति : नहीं राजन। अब नाव वापस ले चलो।

राजन : नहीं रूपा। नाव इतनी जल्दी वापस नहीं लौट सकती। आज शरद् पूर्णिमा की रात है। वर्ष भर में केवल एक बार आती है ऐसी सुन्दर रात...

रूप ज्योति : लेकिन.....

राजन : (बात काटते हुए) तुम्हें घर पहुँचना है। तुम इतनी जल्दी परेशान क्यों हो जाती हो। हमें आए हुए अभी एक घण्टा भी नहीं हुआ।

रूप ज्योति : लेकिन मैं तो केवल आध घण्टे का बहाना कर के आई थी।

राजन : बहाना ही करना था तो ज़रा लम्बे अरसे के लिए कर लिया होता। वैसे मैं समझता हूँ कि बहाना करने की ज़रूरत (ज़रा रुक कर) ही क्या है?

रूप ज्योति : तुम्हें मज़ाक सूझ रहा है। तुम नहीं जानते घर के लोग क्या सोच रहे होंगे।

राजन : यही कि मैं और तुम, यानी हम दोनों।

रूप ज्योति : तुम घर के बन्धनों को नहीं जानते।

राजन : क्यों?

रूप ज्योति : तुम पुरुष हो इन बन्धनों से मुक्त।

राजन : तुम भी इन बन्धनों से मुक्त हो सकती हो। और.....

रूप ज्योति : मेरी बात दूसरी है मैं.....

राजन : (बात काटते हुए) नारी हूँ। घर और समाज के बन्धनों में जकड़ी हुई हूँ। यदि मैं तुम्हारी तरह

रूप ज्योति : (आवेश में बात काट कर) राजन तुम व्यंग्य कर के मेरे दिल को छलनी न करो।

राजन : तुम्हारे भी दिल है।

रूप ज्योति : राजन।

राजन : अगर दिल होता तो ऐसी बातें न करतीं।

रूप ज्योति : राजन तुम नहीं समझ सकोगे कि...

राजन : (ध्यान न देते हुए) पुरुष हो या स्त्री। बन्धन सब के लिए एक जैसे होते हैं।

रूप ज्योति : लेकिन नारी के लिए बन्धन तोड़ना बहुत कठिन है।

राजन : प्यार की राह में कोई बन्धन नहीं होता और जो होते हैं वे टूट जाते हैं या तोड़ दिए जाते हैं।

रूप ज्योति : तुम ठीक कहते हो राजन। हर काम का अपना समय होता है।

राजन : क्या वह समय आया अभी नहीं आया।

रूप ज्योति : (मौन रहती है)

राजन : समय आता नहीं। लाया जाता है।

रूप ज्योति : तुम जो कहते हो एक हद तक ठीक है।

राजन : वह हद कौन सी है। ज़रा मैं भी सुनूँ।

रूप ज्योति : राजन! मैं रात गए तक तुम्हारे साथ स्वतन्त्र नहीं घूम सकती।

राजन : इस हद को तोड़ना ज़रूरी है।

रूप ज्योति : मुझ में साहस नहीं।

राजन : क्यों?

रूप ज्योति : क्यों? इस का कोई उत्तर नहीं।

राजन : तो फिर?

रूप ज्योति : तो फिर क्या?

राजन : तो फिर कुछ भी नहीं।

रूप ज्योति : क्या कुछ भी नहीं।

राजन : यही सब कुछ! जो मैं अभी तक समझता रहा हूँ।

रूप ज्योति : यानी?

राजन : मैं नहीं जानता था कि पढ़ लिख कर भी कोई व्यक्ति...

रूप ज्योति : स्त्री की बात दूसरी है।

राजन : क्या...उफ़ तुम कभी कभी कैसी बातें करती हो।

रूप ज्योति : तुम कई बार ऐसा कह चुके हो।

राजन : ऐसा लगता है कि तुम पर इन सब बातों का प्रभाव नहीं होता।

रूप ज्योति : तुम्हें लेक्चर झाड़ने में बड़ा मज़ा आता है। तुम परिस्थिति को नहीं समझते। बहुत देर हो रही है। नाव लौटा लो।

राजन : आज नाव नहीं लौटेगी।

रूप ज्योति : तुम आज मुझे (रुक जाती है) तुम ने पतवार क्यों छोड़ दी।

राजन : बात पूरी करो।

रूप ज्योति : नाव वापस ले चलो। मुझे डर लगता है राजन। ज़िद न करो। वापस चलो।

राजन : (मंद हँसी हँसते हुए) जब तुम्हें इस अन्दाज से बोलती हो तो जानती हो कि मैं तुम्हारे बारे में क्या सोचता हूँ।

रूप ज्योति : (मौन रहती है)

राजन : मैं सोचता हूँ कि तुम इन चाँदनी रातों का दर्द लिए अपने घर अपनी थकी हुई ज़िन्दगी ले कर किसी ज्योतिषी से अपने हाथ की रेखा पढ़वा रही होगी। लकीरें तो बनती बिगड़ती रहती हैं, और अपने पति के दिए हुए दो तीन चार पाँच बच्चों को मार पीट कर अपने असफल जीवन का बदला ले रही होगी।

रूप ज्योति : तुम चुप नहीं रह सकते।

राजन : मैं बहुत गम्भीरता से कह रहा हूँ, रूप।

रूप ज्योति : नाव वापस ले लो। वरना मैं...

राजन : (बात काटते हुए) झील में कूद पड़ूँगी।

रूप ज्योति : वापस चलो।

राजन : एक बात तो बताओ रूप...तुम आज मेरे साथ आने के लिए तैयार कैसे हो गई।

रूप ज्योति : तुम्हारा मतलब ?

राजन : यही अगर घर लौटने की। (रुक जाता है)

रूप ज्योति : ख़ैर। कई बार कह चुकी हूँ कि मैं तुम्हारी तरह स्वतन्त्र नहीं।

राजन : और न हो सकती हो।

रूप ज्योति : शायद।

राजन : शायद क्या ?

रूप ज्योति : शायद मुझे।

राजन : शायद तुम्हें स्वतन्त्र कर दिया जाए। मुझे तुम्हारी इस स्वतन्त्रता से कोई ख़ुशी नहीं होगी। नाव वापस करूँ।

रूप ज्योति : (चौंक कर) राजन।

राजन : अभी थोड़ी देर में घर पहुँच जाओगी। कहो तो मैं तुम्हें चोरी-छुपे घर पहुँचा आऊँ।

रूप ज्योति : राजन तुम रूठ गए। (सिसकते हुए)

राजन : रोने की कोई ज़रूरत नहीं। नाव किनारे पर ही अच्छी लगती है। मँझधार में डूबने का ख़तरा है।

(नाव रुकने की आवाज़)

राजन : तुम अब जा सकती हो। मैं अभी कुछ देर और यहीं ठहरूँगा।

रूप ज्योति : राजन।

(लहरों की आवाज़)

राजन : और इस तरह शरद् पूर्णिमा की रात, जिस की चाँदनी को मैं अपने अंग-अंग में भर लेना चाहता था, ख़त्म हो गई और चाँदनी के बजाय मेरे अंग-अंग में एक ऐसा दर्द भर गई, जिस की तड़प आज तक बाक़ी है। रूप ज्योति बहुत देर झील के किनारे भीगी आँखों से मेरी ओर देखती रही। लेकिन उस रात के कुछ मास बाद ही उसका विवाह हो गया। उसकी सिसकियों की आवाज़ धीरे-धीरे मध्यम होते-होते रात की निःस्तब्धता में डूब गई। उस समय स्कूल आफ़ आर्ट में मेरा अन्तिम वर्ष था। धीरे-धीरे मैं भूलने लगा कि मेरे जीवन में शरद् पूर्णिमा की कोई ऐसी रात भी आई थी लेकिन...दो वर्ष बाद यह संघर्ष फिर से जागृत हो गया।

चित्रलेखा : वाह, क्या ख़ूब चित्र बनाया है।

राजन : जानती हो चित्र की प्रेरणा कहाँ से मिली ?

चित्र लेखा : कहीं से भी मिली हो। मुझे तो चित्र से मतलब है।

राजन : और चित्रकार से नहीं।

चित्रलेखा : चित्रकार हमेशा अपने चित्रों से ही पहचाना जाता है।

राजन : तुम हमेशा कला-आलोचक की भाषा में ही बात करती हो। मैं केवल चित्रकार ही नहीं राजन भी हूँ।

चित्र लेखा : चित्रकार का केवल एक ही व्यक्तित्व होता है।

राजन : और चित्रकार का सम्बन्ध एक मित्र के नाते भी हो सकता है।

चित्रलेखा : लेकिन मैं इस समय एक चित्रकार से बात कर रही हूँ।

राजन : जो तुम्हारा.....

चित्रलेखा : जो इस समय केवल एक कलाकार है।

राजन : लेकिन कलाकार का अपना एक अलग व्यक्तित्व भी होता है।

चित्रलेखा : यह विवाद की बात है।

राजन : लेकिन कला के आलोचक के नाते भी यह सोचना गलत नहीं कि किसी चित्र की प्रेरणा कहाँ से मिली।

चित्रलेखा : मैं आलोचक के नाते नहीं, दर्शक के नाते बात कर रही हूँ।

राजन : चलो किसी नाते सही, तुम्हें चित्र पसन्द तो आया।

चित्रलेखा : बहुत।

राजन : लेकिन मुझे चित्र से अधिक उसकी प्रेरणा पसन्द आई।

चित्रलेखा : यानी।

राजन : तुम।

चित्रलेखा : (हँसते हुए) अच्छा अब तुम भी मज़ाक करने लगे।

राजन : मज़ाक नहीं। अगर तुम चित्र के बजाय मेरी ओर देख रही होतीं।

चित्रलेखा : यदि मुझे मज़ाक की इजाज़त हो तो कहूँ—कि चित्र तुम से अधिक सुन्दर है।

राजन : (हँसते हुए) इसलिए कि चित्र में केवल तुम्हारा ही अक्स झलकता है।

चित्रलेखा : नान सेंस।

राजन : सच कहता हूँ चित्रलेखा। यह चित्र तुम्हारा ही काल्पनिक रूप है, जिसमें राजन ने अपनी कल्पना से रंग भरे हैं।

(चित्रलेखा मौन रहती है)

तुम चित्र से आँखें हटाओ और देखो मेरी आँखों में—

चित्रलेखा : विचित्र कलाकार हो। अपने चित्र की अपेक्षा अपना चेहरा दिखाने को उत्सुक हो।

राजन : चित्र तुम फिर भी देख सकती हो।

चित्रलेखा : तुम इस तरह क्या देख रहे हो—

राजन : एक जीवित चित्र—

चित्रलेखा : धन्यवाद।

राजन : बस।

चित्रलेखा : और क्या।

राजन : क्या तुम वास्तव में इतनी...मेरा मतलब है, इतनी...

चित्रलेखा : (बात पूरी करते हुए) मोहित हो गई हूँ चित्र पर.. हाँ।

राजन : इतना कि चित्र बनाने वाला तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो गया।

चित्रलेखा : मैं समझती हूँ कि चित्र की प्रशंसा चित्र बनाने वाले की प्रशंसा है।

राजन : चित्र बनाने वाले को कभी-कभी अपनी प्रशंसा की भी चाह होती है।

चित्रलेखा : नहीं। मैं स्त्री हूँ। तुम्हारे कहने के अनुसार सुन्दर हूँ। स्त्री जाति की परम्परा के अनुसार अपनी प्रशंसा सुन कर एक पुरुष की अपेक्षा मुझे अधिक प्रसन्नता होनी चाहिए। लेकिन विश्वास करो, यदि मुझे अपने और अपनी कला में चयन करना हो तो···

राजन : तुम्हारी कला तुम से हीन है।

चित्रलेखा : यह सुन कर मुझे खुशी नहीं हुई।

राजन : किस बात की खुशी?

चित्रलेखा : यही कि तुम मेरी कला की अपेक्षा मुझे अधिक महत्व देते हो।

राजन : चित्रलेखा, कला मानव का प्रतिरूप नहीं बन सकती। और मानव जीवन कला का बदल नहीं बन सकता।

चित्रलेखा : यों लगता है राजन कि तुम कोई बात कहना चाहते हो मगर कह नहीं पा रहे।

राजन : तुम ने कला को सदैव आलोचक की दृष्टि से देखा है।

चित्रलेखा : और किस दृष्टि से देखना चाहिए?

राजन : मानव की दृष्टि से। वरना जिस बात को मैंने चित्र के सम्बन्ध से कहा है, उसे.....

चित्रलेखा : मेरा विचार है, जहाँ तक इस चित्र का सम्बन्ध है, मैं उस चित्र को अच्छी तरह समझ पाई हूँ।

राजन : चित्रलेखा, तुम कुछ भी नहीं समझ

पाई।

चित्रलेखा : तो फिर तुम ही समझा दो।

राजन : तुम जानती हो कि चित्रकार क्यों चित्र बनाता है?

चित्रलेखा : कैसा प्रश्न है?

राजन : लेकिन इसका उत्तर आवश्यक है।

चित्रलेखा : जब उसे प्रेरणा मिलती है।

राजन : कलाकार को उस प्रेरणा से प्यार होता है और इस चित्र की प्रेरणा तुम हो।

चित्रलेखा : कलाकार को सिवाय अपनी कला के किसी से प्यार नहीं होता।

राजन : दार्शनिक बनकर मानव की भावनाओं को भूल रही हो। तुम नहीं समझ रही कि कला के लिए भी तुम्हारे प्रेम की आवश्यकता है। जब कला और प्रेम मिल जाते हैं।

चित्रलेखा : तुम स्वप्न देख रहे हो राजन।

राजन : मै स्वप्न को यथार्थ बना रहा हूँ।

चित्रलेखा : तुम्हारे चित्र कितने सुन्दर होते हैं! लेकिन मुझे अफ़सोस है राजन! तुम्हारा यह काल्पनिक चित्र हमेशा अधूरा रहेगा।

राजन : तुम मेरी कला का अपमान कर रही हो।

चित्रलेखा : मुझे तुम्हारी कला से प्यार है।

राजन : तुम मेरी कला के परदे के पीछे मेरे व्यक्तित्व को खत्म कर देना चाहती हो।

चित्रलेखा : शायद तुम होश में नहीं हो राजन।

राजन : मुझे और मेरी कला दोनों को तुम्हारे प्यार ने बाँध रखा है।

चित्रलेखा : राजन! कला के लिए तुम्हें प्यार की बलि देनी होगी।

राजन : तुम एक दार्शनिक बन कर मेरे प्रति अपनी घृणा को छिपाना चाहती हो। तुम्हारे दिल की धड़कनों में किसी दूसरे.. ...।

चित्रलेखा : राजन!

राजन : मै जान गया, तुम कला की प्रशंसा नहीं कर रही हो। मुझे ऐसी कला की आवश्यकता नहीं, जो मेरे जीवन में अभाव पैदा कर दे।

चित्रलेखा : राजन!

राजन : चित्रलेखा! तुम जा सकती हो और यह चित्र भी ले जा सकती हो। (चित्र टूटने की आवाज़)

राजन : चित्र टूट गया...(खाँसते हुए) सब चित्र टूट गए। मुझे महसूस हुआ कि जीवन के सब रंग बिखर गए हैं और इन रंगों को समेटने के लिए मैं इधर-उधर भटकता रहा। मै अपने दिल के घाव से भाग रहा था लेकिन...मैने लाहौर छोड़ दिया। जीवन के लिए जो कसक मुझे दो बार तड़पा चुकी थी, उसने फिर मुझे मृत्यु के निकट ला खड़ा किया—आत्म-हत्या, लेकिन मेरे हाथ काँपते रहे और उस समय तक काँपते रहे, जब तक कि स्वर्ण बाला ने मुझे अपनी बाहों का सहारा नहीं दे दिया।

राजन : बाला! तुम थोड़ी देर के लिए मौन नहीं रह सकती।

स्वर्णबाला : क्यों मौन रहूँ?

राजन : देख रही हो, मै चित्र बना रहा हूँ।

स्वर्ण बाला : जल्दी क्या है, फिर बना लेना।

राजन : इस समय 'मूड' में हूँ। अगर अब न बनाया तो फिर कभी न बन सकेगा।

स्वर्णबाला : तुम कलाकार लोगों का 'मूड' भी बड़ा विचित्र होता है। आता है तो सब कुछ भूल जाते हो। नहीं आता तो कई दिनों तक नहीं आता।

राजन : ये बातें तुम्हारी समझ से बाहर हैं।

स्वर्णबाला : क्यो मेरी बुद्धि छोटी है ना!

राजन : बहुत बड़ी है बाबा। अब ज़रा मौन रहो।

स्वर्णबाला : मुझे पसन्द नहीं, यह तुम्हारा हर समय चित्रों में खोए रहना।

राजन : तुम क्या चाहती हो।

स्वर्णबाला : बातें।

राजन : तुम कहो मैं सुन रहा हूँ।

स्वर्णबाला : और तुम?

राजन : मै चित्र बनाता रहूँगा।

स्वर्णबाला : क्या मै पागलों की तरह दीवारों से बातें करती जाऊँ?

राजन : यह रूठने के अन्दाज़ कैसे हैं? कहो क्या चाहती हो?

स्वर्णबाला : कहीं बाहर चलें। आज रात कितनी सुन्दर है। ऐसी रात में मुझ से मुँह बन्द किए नहीं बैठा जाता।

राजन : कहाँ चलें?

स्वर्णबाला : कहीं भी।

राजन : तुम ऐसा करो बाला। धीरे-धीरे कोई गीत सुनाओ। तुम्हारा मज़ा भी पूरा हो जाएगा और मेरा चित्र भी।

स्वर्णबाला : किस फ़िल्म का गीत ?

राजन : फ़िल्म का गीत मुझे पसन्द नहीं।

स्वर्णबाला : मैं पक्के राग गा कर अपना मुँह बिगाड़ने से तो रही।

राजन : तुम संगीत क्यों नहीं सीख लेतीं ?

स्वर्णबाला : मुझे तुम्हारी तरह कलाकार नहीं बनना। अपना दिल बहलाना है।

राजन : तो फिर कोई भी गीत गाओ। थोड़ी देर में काम ख़त्म करके बाहर चलेंगे।

स्वर्णबाला : आज बोलगा चलेंगे या ग्रेगरी पैक का नया फ़िल्म.....

राजन : (बात काटते हुए) ऐसी सुन्दर शाम किसी चारदीवारी के अन्दर बिता देना ऋतु का अपमान है।

स्वर्णबाला : और इस सीले हुए कमरे में विचित्र गन्ध वाले रंगों से खेलना ऋतु का सम्मान है क्या ?

राजन : उलझती क्यों हो। जहाँ तुम कहोगी चलेंगे। बस थोड़ा-सा काम.....

स्वर्णबाला : प्रोग्राम सुन लो। इसके बाद तुरन्त तैयार हो जाओ। सब से पहले किसी अच्छे होटल में पेट भर कर खाना, फिर थोड़ी देर के लिए काफ़ी हाऊस में काफ़ी पीना। इसके बाद ग्रेगरी पैक की पिक्चर और फिर इंडिया गेट की सैर...

राजन : बहुत अच्छा है। अब तुम मौन हो जाओ। कोई पुस्तक देखो या मुझे ही काम करते देखो। बड़ा दिलचस्प काम है।

स्वर्णबाला : खाक दिलचस्प है। घण्टों घुटने टेक कर बैठे रहते हो और जब बाहर घूमने का समय आता है (नक़ल करते हुए) मैं थक गया हूँ, अब तो टाँगें भी दर्द करने लगी हैं। कल चलेंगे। मुझे तो समझ में नहीं आता कि क्या मज़ा आता है तुम्हें यह बिगड़े हुए चेहरे बनाने में। किसी का हाथ कमर से शुरू होता है और किसी की आँख कन्धे पर नज़र आती है।

राजन : काश ! तुम इस कला को समझ सकती। ज़रा ब्रश देना।

स्वर्णबाला : छोड़ो भी अब।

राजन : यह नहीं दूसरा।

स्वर्णबाला : उफ़ कितनी घुटन है इस कमरे में और कैसी विचित्र गंध है।

राजन : (खाँसते हुए) तुम बाहर बालकनी में खड़ी हो सकती हो।

स्वर्णबाला : लेकिन तुम नहीं हिलोगे।

राजन : क्यों बच्चों तरह ज़िद करती हो ?

स्वर्णबाला : और तुम क्यों बूढ़ों की तरह अपनी जगह से हिलने का नाम नहीं लेते।

राजन : (खाँसते हुए) अच्छा तो चलो।

(दोनों हँसते हैं)

स्वर्णबाला : (ताली बजाते हुए) तुम तैयार हो जाओ। मैं यह कूचा कर कट एक ओर रख दूँगी।

राजन : मैं इन्हीं कपड़ों में चलूँगा।

स्वर्णबाला : तुम्हारा कुर्ता तो बिलकुल ख़राब हो रहा है। देखो तो कितने नीले पीले धब्बे हैं।

राजन : तो क्या बुराई है।

स्वर्णबाला : बस अपना चित्र बन रहे हो। कार्टून।

राजन : नज़र नज़र की बात है बाला। चलो अब देर मत करो। जब मैं काम नहीं कर रहा होता तो मुझे भी इस कमरे में घुटन महसूस होती है चलो।

(दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़)

राजन : ओह चाबी तो मैं अन्दर ही भूल आया।

स्वर्णबाला : कलाकार जो ठहरे।

(दरवाज़ा खुलने और बन्द होने की आवाज़)

स्वर्णबाला : कितनी ताज़ा हवा है। जी चाहता है कि मेरे पर लग जाएँ।

राजन : अगर तुम्हें पर लग गए तो उड़ जाओगी।

स्वर्णबाला : पर होंगे तो देखा जाएगा। अब बताओ पैदल चलें या टैक्सी पर।

राजन : पैदल ही चलते हैं। अच्छा मौसम है और फिर टैक्सी के लिए पैसे कहाँ से आएँगे।

स्वर्णबाला : इसीलिए तो कहती हूँ कि इन तिरछी रेखाओं में रंग भरना छोड़ो और कोई और काम करो।

राजन : कोई और काम—कैसा काम ?

स्वर्णबाला : जिस से रोटी मिले।

राजन : उससे पेट की भूख तो मिट जाएगी लेकिन आत्मा की...?

स्वर्णबाला : आत्मा की भूख भी मिट जाएगी जब जेब में पैसे होंगे।

राजन : तुम ठीक कहती हो और ग़लत भी।

स्वर्णबाला : आर्ट वार्ट तो धनी लोगों का शुग़ल है।

राजन : यानी तुम जैसे लोगों का।

स्वर्णबाला : और नहीं तो क्या। दिन भर जान-मारी करते रहते हो और महीनों के बाद भी एक चित्र नहीं बन पाता।

राजन : लेकिन इसमें मेरा क्या दोष। जब तक मेरी अपनी सन्तुष्टि न हो जाए मैं चित्र बाहर नहीं लाता।

स्वर्णबाला : और जब लाता हूँ तो इसके कोई दाम नहीं देता।

राजन : हाँ।

स्वर्णबाला : फिर भी तुम होश में नहीं आते। इससे तो यही अच्छा है कि कोई छोटा-सा स्कूल खोल लो।

राजत : यानी कला की दुकान।

स्वर्णबाला : क्या बुराई है?

राजन : मुझे बिज़नैस से कोई दिलचस्पी नहीं और फिर कला का बिज़नैस!

स्वर्णबाला : तो फिर भूखे रहो बाबा।

(ख़ामोशी)

स्वर्णबाला : तुम मौन क्यों हो गए राज? कोई बात करो।

राजन : यह चित्र जो मैं बना रहा हूँ, इसमें मेरे दिल का ख़ून शामिल है।

स्वर्णबाला : छोड़ो चित्रों को, कोई और बात करो।

राजन : जब भी चित्रों की बात आती है, तुम बोर हो जाती हो।

स्वर्णबाला : तुम बातें ही ऐसे करते हो! हर समय मेरा यह चित्र, वान गो का वह चित्र। क्या विचित्र विचित्र नाम लेते हो? जैसे चित्रकारी ही समस्त जीवन है।

राजन : नहीं, लेकिन.....।

स्वर्णबाला : छोड़ो इन बातों को कोई! इधर उधर की बात भी किया करो।

राजन : वह काम तुम्हारे लिए जो छोड़ रखा है।

स्वर्णबाला : सच कहती हूँ अगर तुम्हारी जगह कोई और होता तो कब की मित्रता समाप्त हो चुकी होती।

राजन : इसका मतलब है कि न चाहते हुए भी तुम्हें मेरी कला से प्यार है।

स्वर्णबाला : तुम्हारी कला में नहीं, तुमसे।

राजन : इस का कारण?

स्वर्णबाला : यह कि इस का कोई कारण नहीं।

राजन : यह तुम इस ओर कहाँ जा रही हो?

स्वर्णबाला : यहाँ मेरी एक सखी रहती, है कहो तो उसे बुला लूँ।

राजन : रहने दो।

स्वर्णबाला : विचित्र बात है तुम लोगों से मिलने से भी कतराते हो।

राजन : कुछ लोगों से न ही मिला जाए तो बेहतर ही है।

स्वर्णबाला : इसीलिए तो कहती हूँ कि तुम समय से पहले बूढ़े हो गए हो। तुम्हारे लिए आदमी, आदमी नहीं रहे, माडल बन गए हैं।

राजन : वे आदमी हैं इस लिए मेरे माडल हैं।

स्वर्णबाला : तुम ने हर आदमी को माडल के रूप में देखा है। मुझे भी...वरना...। (रुक जाती है)

राजन : रुक क्यों गई हो बाला।

स्वर्णबाला : कुछ नहीं। वरना तुम इस तरह बातें न करते।

राजन : तुम ग़लत समझ रही हो बाला। मैं हर आदमी को अपने चित्रों में नया जीवन देता हूँ।

स्वर्णबाला : लेकिन उनको जीवन में क्या देते हो?

राजन : (खाँसता है) जीवन का सौन्दर्य।

स्वर्णबाला : और स्वयं क्या लेते हो, खाँसी और दर्द।

राजन : बाला, तुम जानती हो कि यह सुन कर मुझे कितना दुःख होता है।

स्वर्णबाला : और मुझे यह कहते हुए कम दुःख नहीं होता कि...(रुक जाती है)

राजन : कहो बाला।

स्वर्णबाला : तुम्हें जीवन की ऊष्मा की आवश्यकता है। यही जीवन का सौन्दर्य है।

राजन : जीवन की ऊष्मा।

स्वर्णबाला : मुझे तुम्हारा जीवन कुछ अधूरा-सा जान पड़ता है।

राजन : और तुम उसे पूर्ण करने में क्या कर सकती हो।

स्वर्णबाला : यही तो मेरी समझ में नहीं आता। मुझे तो डर लगता है कि तुम्हारे जीवन की राख कहीं मेरे जीवन की चिनगारी को भी न बुझा दे।

राजन : तुम मेरे विगत को भूल क्यों नहीं जाती?

स्वर्णबाला : उसे तो भूल चुकी हूँ लेकिन तुम्हारे वर्तमान को कैसे भूल जाऊँ?

राजन : बाला!

स्वर्णबाला : राजन् अगर तुम मुझ से...

राजन : मैं समझ गया बाला!

स्वर्णबाला : इसका मतलब यह होगा कि तुम्हें अपने जीवन को नए साँचे में ढालना होगा। तुम्हें अपने जीवन को इस तरह नीरस बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं होगा।

राजन : यानी।

स्वर्णबाला : तुम्हें मेरे साथ खुली हवा में साँस लेना होगा। जीवन की रंगीनियों में खो जाना होगा और भूल जाना होगा कि तुम कभी वह राजन थे, जो चित्रकार था और जिस का विगत...।

राजन : तुम जीवन को क्या समझती हो।

स्वर्णबाला : वह इस युग की हर युवती को समझना चाहिए।

राजन : यानी।

स्वर्णबाला : खाना, पीना, घूमना और मदहोश रहना।

राजन : यह मुझ से न हो सकेगा बाला!

स्वर्णबाला : यही तुम्हें करना होगा, अगर तुम्हें जिन्दा रहना है। वरना एक दिन खाँसते खाँसते...उफ़ मैं इस को सोचते ही काँप जाती हूँ।

राजन : लेकिन मेरी कला अमर रहेगी।

स्वर्णबाला : हर कलाकार का यह भ्रम होता है जीवन है तो कला है, सब कुछ है, अगर जीवन नहीं तो कुछ भी नहीं।

राजन : मैं ने बहुत जीवन देख लिया, मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारी राह अलग है।

स्वर्णबाला : तुम इतनी जल्दी इस निर्णय पर पहुँच गए। यह जीवन का प्रश्न है सोचकर बात करो राजन।

राजन : इसलिए कि जीवन के बारे में मेरी कल्पना में एक चित्र है।

स्वर्णबाला : अपने चित्रों के कैन्वेस से बाहर निकल कर देखो दम भर में दुनिया बदल जाती है।

राजन : मैं ने दुनिया बदलती देख ली है।

स्वर्णबाला : तो तुम्हारी दुनिया में इन सब बातों के लिए कोई जगह नहीं।

राजन : हाँ, ये सब बातें मेरे चित्रों के रंग बखेर देती हैं। मैं समझता था कि मेरे सम्पर्क में आने के बाद .....।

स्वर्णबाला : मैं भी तुम जैसी हो जाऊँगी नीरस, यह नहीं हो सकता।

राजन : तो कुछ भी नहीं हो सकता।

स्वर्णबाला : राजन!

राजन : तुम भी मेरे जीवन के एक बाग़ से प्यार करती हो और उस अधूरे प्यार के बदले मुझ समूचे को भोग लेना चाहती हो! नहीं नहीं-नहीं...।

स्वर्णबाला : राजन!

राजन : (खाँसते हुए) और इस तरह स्वर्णबाला भी उस मोड़ पर ओझल हो गई, जिस पर रूप ज्योति और चित्रलेखा गुम हो गई थीं और मैं फिर जीवन की वीरानियों में खो गया और उसमें फूलों का सौन्दर्य और सौरभ भरने की कोशिश करने लगा। अब मेरे सारे दर्द किसी गहरी नींद में सो गए हैं और दर्द की टीसों की अपेक्षा एक प्रकार की थकन का बोझ महसूस होने लगा है। शायद मेरे कदम तेज़ी के साथ समय से पहले ही मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं। ऐसा लगता है कि सब काम निष्फल है। जीवन एक स्वप्न है ..एक टूटा हुआ स्वप्न और मेरे चित्र...(खाँसता है) मेरे चित्र भी मेरे जीवन के स्वप्न को पूरा नहीं कर सके। जीवन के हर मोड़ पर मैंने समझा कि अब स्वप्न यथार्थ बनने लगा है, लेकिन यह स्वप्न विशाल होता गया। मैंने हमेशा दूसरों के स्केच में रंग भरने की कोशिश की और मेरा जीवन रंगों से खाली रहा। स्वप्न की इस विशालता को समेटने का मेरा महान्

प्रयत्न है प्रीतकला...परम मित्र अशोक की यह नन्हीं सी बच्ची जो उस ने बड़ी उदारता से मेरे पालन-पोषण में दे दी है और इस शाहकार के निर्माण में मैं राजन से बाबा बन गया। मेरी कला एक बार फिर अंगड़ाई ले कर जाग उठी। मेरे हाथों में शक्ति आ गई। मेरी रेखाएँ तीखी होने लगीं और मेरे रंगों में निखार आ गया। प्रीतकला मेरे नीरस जीवन की एक मात्र किरण बन कर समस्त अंधकार पर छा गई। इस प्रकाश में जैसे मेरे तमाम घाव भरने लगे। जैसे हर घाव से दीप जलने लगे हों; फूल खिल रहे हों। जीवन में मुझे कभी भी ऐसा संगीत नज़र न आया था। तमाम बुझे हुए दिए एक एक कर के जलने लगे और सारी सृष्टि झूम कर नाचने लगी। मैंने एक मूर्तिकार की तरह उसका निर्माण किया। एक चित्रकार की तरह उसका रंग रूप निखारा। एक कहानीकार की तरह उसकी राहें तराशीं और एक गीतकार की तरह उसमें जीवन के सौन्दर्य की लहर उठाई और उसका नाम रखा प्रीतकला-रूप, कला और प्रेम। आज मेरा यह शाहकार अपने कैनवेस से निकलकर जीवित हो गया है।

(दूसरे कमरे से होले होले गुनगनाने की आवाज़)

(दरवाज़े पर दस्तक)

राजन : इतने सवेरे कौन हो सकता है। शायद हवा का झोंका है।

(दस्तक की आवाज़)

(दूसरे कमरे में प्रीतकला की आवाज़)

प्रीतकला : कौन...कौन है ?

राजन : (खाँसता हुआ। प्रीतकला! तुम सोई नहीं।

प्रीतकला : (दूसरे कमरे से) नहीं बाबा और तुम ?

राजन : मैं भी नहीं सो सका। देखो बाहर कौन है ?

प्रीतकला : जब तक उत्तर नहीं मिलेगा, दरवाज़ा नहीं खुल सकता।

राजन : शायद कोई अपरिचित हो। क्या उत्तर दें।

प्रीतकला : इस समय अपरिचित का क्या काम ?

(दस्तक)

राजन : तो फिर कोई होगा, जो कभी गया ही नहीं (हँसता है।) (दरवाज़ा खुलने की आवाज़)

प्रीतकला : ओह, प्रदीप तुम हो! उत्तर क्यों नहीं दिया ?

प्रदीप : तुम्हें मालूम होना चाहिए ?—बाबा

राजन : आज इतनी सवेरे प्रदीप, बाहर तो सर्दी है।

प्रदीप : जी हाँ, इसलिए तो आ गया। कला की शाल मेरे पास रह गई थी।

राजन : (हँसते हुए) मालूम होता है, रात भर नहीं सोए। इस विचार से कि.....।

प्रदीप : और बाबा तुम भी तो नहीं सोए।

राजन : यद्यपि मुझे सो जाना चाहिए था।

(प्रदीप और प्रीतकला हँसते हैं।)

राजन : आज शरद् पूर्णिमा की रात है।

प्रदीप : (हँसते हुए) हाँ बाबा नींद कैसी आती।

प्रीतकला : बाबा तुम्हारे लिए चाय बनाऊँ।

राजन : हाँ। अब प्रभात हो गई है। दूसरे कमरे में ही बना लेना। प्रदीप ज़रा सहायता करना कला की, आज देखें तो तुम्हें चाय बनाना भी आता है या नहीं।

(दूसरे कमरे में जाने की आवाज़)

राजन : (अपने आप से) यों लगता है कि आज, ...आज (दूसरे कमरे में प्रीतकला के गुनगुनाने की आवाज़) कितने खुश हैं दोनों। दोनों का जीवन होले-होले सुरों में गुनगुना रहा है। यों लगता है कि आज चित्र पूरा हो रहा है। लेकिन यह मेरा चित्र नहीं है। प्रीतकला का चित्र है। प्रदीप का चित्र है। लेकिन प्रीतकला मेरा ही बनाया हुआ चित्र है। मेरा काम चित्र बनना नहीं, चित्र बनाना है। शरद् पूर्णिमा का चाँद कितना सुन्दर होता है, लेकिन यह प्रकाश सूर्य अपने दिल को जला कर चन्द्रमा को देता है। यही चित्रकार का काम है। (खाँसता है) शरद् पूर्णिमा की रात खत्म हो रही है। मैं कितना भाग्यवान् हूँ कि आज बीस वर्ष की मेहनत के बाद उसका उज्जवल प्रकाश अपने दिल में समेट सका हूँ। लेकिन यह चित्र पूरा होते देख कर न जाने खुशी के साथ साथ मेरे दिल में मन्द मन्द दर्द-सा क्यों होता है।

(दूसरे कमरे से प्रदीप के हँसने की आवाज़)

(खाँसते हुए) इस दर्द में मुझे अपने जीवन की

झलक नज़र आती है जैसे चित्र पूरा हो गया हो (ज़ोर ज़ोर से खाँसता है) खून आने लगा है (लगातार खाँसता है)।

प्रदीप : (दूसरे कमरे से) बाबा कितनी बुरी तरह खांस रहा है।

प्रीतकला : (दूसरे कमरे से) मुझे तो अब ऐसा जान पड़ता है।

(खाँसने की आवाज़)

प्रीतकला : (दूसरे कमरे से) बाबा।

(खाँसी जारी रहती है)

(दरवाज़ा खुलने की आवाज़)

प्रीतकला और प्रदीप : बाबा

राजन : अब मेरे दर्द की कोई दवा नहीं शायद यह दर्द...मेरे...साथ ही...खत्म...होगा।

प्रीतकला और प्रदीप : बाबा

राजन : (खांसता है) प्रेम-पूर्ति के बिना मृत्यु कितनी कठिन होती है और (खाँसता है) मेरे पास आओ कला...तुम भी प्रदीप...आज मैं कितना खुश हूँ ...कितना खुश...(शब्द खांसी में डूब जाते हैं)

एच-३१५-न्यू राजेन्द्र नगर,
नई दिल्ली

—देवेन्द्र इस्सर

दखनी बोल

१. चाखी सो जाने,
नई चाख्या सो क्या पिछाने।

२. माल खरचने कू
ना कि खाली सन्दूक में भरने कूँ,

३. तुझ में भोत हैं गुन,
किसी का तूँ बी बोल सुन

४. ऐसा चित्र उतारूँ जो कोई देखे खुद ना रहे,
जो कोई देखे शाबाश, शाबाश कहे

५. जो कुछ करना है सो कर आज,
कुछ भला-बुरा हुआ तो पीछे क्या इलाज !

६. प्यासा क्या मँगता : पानी
जिस पर मुश्किल है उसे क्या होना : आसानी

'मखरस' से संग्रहीत

हैदराबाद

संग्रह : ललिता देवी

बोरिस पास्टर नैक

नोबेल पुरस्कार पाने वाले किसी और साहित्यकार के बारे में शायद ऐसा विवाद कभी नहीं उठा, जितना बोरिस पास्टर नैक के बारे में हाल में ही उठा है। नोबेल पुरस्कार जो संसार का सबसे महत्वपूर्ण पुरस्कार है और जिसके देने में अत्यधिक निष्पक्षता का पालन किया जाता है, उसके पाने वाले की अन्तर्राष्ट्रीय महत्ता का द्योतक होता है। 'डाक्टर जिवागो' को, जिस पर पास्टर नैक को यह पुरस्कार मिला है, रूस में प्रकाशित किए जाने की अनुमति नहीं दी गई थी, परन्तु वह यूरोप की और भाषाओं में अनूदित हुआ और पाठकों ने उसकी महत्ता को स्वीकार किया। परन्तु पास्टरनैक को नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद ही रूस में एक तूफान-सा उठ आया और उसको रूसी लेखकों के यूनियन से निकाल दिया गया तथा उससे रूसी लेखक की पदवी भी छीन ली गई। उसके ऊपर यह दोषारोपण लगाया गया है कि उसका यह उपन्यास 'क्रान्ति-विरोधी, कलंक लगाने वाला तथा साम्यवाद के प्रति घृणा से पूर्ण हैं।

पास्टरनैक उन लेखकों में से है, जिसने कभी लोकप्रसिद्धि पाने का प्रयत्न नहीं किया और जो हमेशा मास्को के बाहर एक गाँव में शान्तिमय जीवन बिताता आया है। उसका जन्म १८९० में मास्को में हुआ और एक ऐसे घराने में, जहाँ कला और संगीत का समन्वय था, क्योंकि उसका पिता एक चित्रकार था और उसकी माता संगीतकार। उसने मास्को यूनिवर्सिटी में क़ानून का अध्ययन किया और कुछ समय संगीत के अध्ययन में भी बिताया। परन्तु वे दोनों उसको अधिक समय तक अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सके और उसने जर्मनी जा कर पहले महायुद्ध के प्रारम्भ तक दर्शन का अध्ययन किया। युद्धकाल में उसने यूराल के एक कारखाने में काम किया तथा क्रान्ति के बाद उसने शिक्षा सम्बन्धी एक पुस्तकालय में काम किया। इसके बाद से वह मास्को में ही रहता आया है।

पास्टरनैक सब से पहले संसार के सामने एक कवि के रूप में आया। प्रथम महायुद्ध के बीच में उसने अपनी कविताओं के दो संग्रह 'ट्विन इन द क्लाउड्स' तथा 'अबव द बैरियर्स' लिखे। उसकी सबसे महत्वपूर्ण कविताएँ 'माई सिस्टर्स लाइफ़' १९१७ में लिखी गई। १९१७ की क्रान्ति के बाद रूस में जैसा वातावरण था उसमें पास्टरनैक जैसे लेखक का पनपना मुश्किल था।

लेनिन के अनुसार कला तथा साहित्य को आने वाले वर्ग संघर्ष में एक 'शक्तिशाली हथियार' का काम करना था तथा एक 'स्फूर्तिदायक तथा शिक्षात्मक' रूप में प्रकट होना था। पास्टर नैक को इस तरह के साहित्य में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह तो 'जीवन की सच्ची पुकार' अथवा सत्य की पुकार को विकृत न करने के पक्ष में था, ऐसे कलाकार के लिए तो सौंदर्य तथा अध्यात्म के आदर्श ही सर्वोच्च थे। राजनैतिक तथा सामाजिक तथ्यों को पास्टर नैक ने अपनी रचनाओं में केवल 'उन्हीं' के लिए कोई स्थान नहीं दिया है। सोवियत क्रांति का प्रभाव पास्टर नैक पर भी पड़ा था और उसका असर पास्टर नैक की रचनाओं में भी दृष्टिगोचर होता है। परन्तु यह प्रभाव राजनैतिक रूप में कभी प्रकट नहीं होता। 'द इयर', 'लैफ़्टनैन्ट शिमिट' तथा 'स्पेक्टोर्स की' में क्रान्ति का प्रभाव दिखाई पड़ता है, परंतु वे राजनैतिक प्रचार के रूप में नहीं लिखी गई हैं, उन में केवल व्यक्ति विशेष पर क्रांति का प्रभाव दिखाया गया है। दूसरे रूसी कवियों की तरह पास्टर नैक ने भी लेनिन की श्रद्धांजलि में एक कविता लिखी है परंतु उस में लेनिन का नाम नहीं दिया गया है और उस में लेनिन को 'तूफान की एक उछलती हुई गेंद जो बिना धुएँ के एक कमरे में कूद पड़ती है' के रूप में दिखाया गया है।

पास्टर नैक की आत्मकथा 'सेफ कान्डक्ट' १९३१ में प्रकाशित हुई। इस में पास्टर नैक के अनुभवों तथा सामयिक घटनाओं का एक सुन्दर काल्पनिक चित्रण मिलता है। कल्पना के द्वारा ही पास्टर नैक भूत की घटनाओं को नया जीवन देता है, रूसी कवि माया को वेस्की का मृत्यु का इस में ऐसा मार्मिक वर्णन है कि कवि का चित्र हमारी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। पास्टर नैक ने जीवन के दोनों पहलुओं को देखा

है; दुःखान्त तथा सुखान्त परंतु उस में निराशावाद के मुकाबले में आशा जनित उमंग का ही बाहुल्य है। अपनी आत्मकथा में वह एक जगह पूछता है। 'जब कि चारो ओर इतनी प्रसन्नता है तो कोई इतना उदास कैसे रह सकता है?' जीवन के इस सत्य को पास्टर नैक कभी नहीं भूल सकता।

पास्टर नैक की चार कहानियाँ 'एरियल वेज' के नाम से १९३३ में प्रकाशित हुई। इन में से 'चाइल्ड हुड आफ लूवर्स' सब से महत्वपूर्ण है और बिना डाक्टर जिवागो को लिखे हुए भी पास्टर नैक को इसके बल पर विश्व के साहित्य में विशेष स्थान मिलता। इस में जेनिमा का चरित्र बहुत ही हृदयग्राही है, क्योंकि वह जीवन के प्रति पास्टर नैक के प्रेम तथा विस्मय की प्रतीक है, वह प्रेम तथा विस्मय जिसके कारण वह एक अजनबी तथा लंगड़े आदमी के प्रेमपाश में बँध जाती है।

जब कि रूस के अधिकतर लेखक सार्वजनिक तथा राजनैतिक तथ्यों में उलझे रहे हैं, पास्टर नैक उन गिने चुने लेखकों, में से है जो अपना जीवन एकांत में बिताते आए हैं, जो अपने जीवन तथा रचनाओं को व्यक्तिगत तथा विशिष्ट समझते रहे हैं जिनका किसी और से कोई संबन्ध नहीं है। यह 'डाक्टर जिवागो' के शब्द हैं, जो पास्टर नैक की ही बात प्रकट करते हैं। डाक्टर जिवागो का चरित्र भी पास्टर नैक पर ही निर्धारित है क्यों कि डाक्टर जिवागो ने बोलशेविक क्रांति से भाग कर यूराल के पर्वतों में शरण ली है और वह एक ऐसी पुस्तक लिखने के स्वप्न देख रहा है जिसमें कि वह 'डायनमाइट की दबी हुई डंडियों की तरह, उसने जो सबसे महत्वपूर्ण चीज़ों को देखा तथा सोचा था, उनको छिपायेगा। जिवागो स्वयं कई अन्तर द्वन्द्वों का शिकार है। एक तरफ़ उसकी पत्नी है जिससे उसने बचपन से ही प्रेम किया था दूसरी तरफ वह लड़की है, जिससे वह अपनी अधेड़ उम्र में प्रेम करने लगता है। इसके अतिरिक्त जहाँ उसको क्रांति के उद्देश्यों तथा आदर्शों से सहानुभूति थी वह उसके क्रूर तरीकों तथा अमानुषिकता से घृणा करता था। इन अन्तरद्वन्द्वों का परिणाम यह होता है कि पास्टर नैक विक्षिप्त हो जाता है। परंतु पास्टर नैक का विश्वास है कि जीवन, उसको बाँध कर रखने के प्रयत्न से कहीं अधिक शक्तिशाली है तथा किसी भी तरह के आदर्श को मनुष्य के ऊपर बल पूर्वक नहीं लादा जा सकता।

डाक्टर जिवागो की सर्व प्रियता तथा पास्टर नैक के ही देश में उसका बहिष्कार वर्तमान युग में साहित्यकार की स्थिति के प्रतीक है। पास्टर नैक के ऊपर यह दोष लगाया गया है कि उसको विरोधी दल ने नोबेल पुरस्कार का लालच देकर खरीद लिया है। पास्टर नैक ने नोबेल पुरस्कार को भी ठुकरा दिया है क्यों कि वह अपनी ईमानदारी पर किसी तरह की आँच नहीं आने देना चाहता। प्रश्न यह है कि क्या साहित्यकार को किसी राजनैतिक गुट का दास बना कर रखा जा सकता है? क्या उसको भय दिखाकर उसकी आत्मा का हनन किया जा सकता है? पास्टर नैक ने यह सिद्ध कर दिया है कि सच्चा साहित्यकार सत्य के ही पथ पर चलेगा चाहे उसके सामने कितने ही रोड़े और कठिनाइयाँ हों।

३९, मॉडल हौसेज,
लखनऊ

—भोलानाथ चतुर्वेदी

विश्व-शान्ति

यदि विश्व की शान्ति के लिए कोई भी मार्ग सम्भव
है तो मैं इस मार्ग पर अग्रसर होने के लिए तैयार हूँ—
चाहे वह मार्ग कितना ही सकीर्ण और टेढ़ा-मेढ़ा क्यों न हो।

—प्रेज़ीडेण्ट आइज़नहोवर

कौशाम्बी के खण्डहर

कौशाम्बी का नाम लेते ही आँखों के अन्तःपट पर स्वर्णिम भारत के ऐश्वर्य का एक चटकीला चित्र उतर आता है। कौशाम्बी प्राचीन भारत के कुछ उन थोड़े से नगरों में है, जिनके वैभव और महत्व की कथा लिखने में सरस्वती के पुत्रों अपनी समस्त प्रतिभा व्यय कर दी है। मत्स्य पुराण के पचासवें अध्याय में कौशाम्बी नगरी का उल्लेख है।

परमैश्वर्यशाली पाण्डुपुत्र अर्जुन के वंश का वर्णन करते समय उक्त पुराण में बताया गया है कि जनमेजय के पुत्र शतानीक के पुत्र अधिसोमकृष्ण नाम के राजा को विवक्षु नामक पुत्र होगा जो गंगा नदी द्वारा हस्तिनापुर के डुबा दिए जाने पर उस प्राचीन नगर को छोड़ कर कौशाम्बी नामक नगरी में निवास करेगा। इस विवक्षु के आठ बलशाली पुत्र होंगे जिनमें चूरि ज्येष्ठ होगा। उसके वंश में क्रमशः चित्ररथ, शुचिद्रव, वृष्णिमान, सुषेण, सुनीथ, नृचक्षु, सुखीबल, परिप्लव, सुतपा, मेधावी, पुरंजय, उर्व, तिमात्मा, बृहद्रथ, और सुदामा, शतानीक, उदयन, वहीनर, दण्डपाणि, चिरमित्र, क्षेमक, राजा पुत्र, पौत्र आदि रूप मे होते जाएँगे। अन्त में क्षेमक के बाद यह वंश समाप्त हो जाएगा। इस राजा के सम्बन्ध में पुराणों और प्राचीन ऋषियों में एक श्लोक बड़ा प्रसिद्ध था जिसका अभिप्राय था कि "देवर्षियों द्वारा सत्कृत ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का आदि वंश कलियुग में क्षेमक राजा को प्राप्त कर अवस्थान करेगा।"

उक्त कथा से न केवल हस्तिनापुर के प्राचीन लक्षन गंगा द्वारा डुबाना जाना ज्ञात होता है, वरन् इससे पाण्डव वंश का हस्तिनापुर छोड़ कर कौशाम्बी आना तथा प्रख्यात वत्सराज उदयन के पिता सहस्रानीक के नाम के स्थान पर शतानीक बताया गया है। अन्तर केवल शत और सहस्र का है। इसी भाँति उदयन के जिस पुत्र का नाम मत्स्य पुराण में वहीनर बताया गया है उसे बौद्ध ग्रन्थों में बोधि राजकुमार कहा जाता है।

कौशाम्बी वत्सराज की राजधानी थी। वत्सों का राज्य कहाँ तक था, यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतना अवश्य विदित है कि मगध, कोशल, काशी और भर्ग के बीच वत्सों का राज्य था।

अपने सार्थवाह नामक शोध ग्रन्थ में प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर मोतीचन्द ने (पृष्ठ ४६) वत्सों के राज्य का विवरण लिखते समय बताया है कि—"उत्तर भारत में उस समय एक दूसरी बड़ी शक्ति-वंश अथवा वत्स थी। इस राज्य के पूर्व में मगध और दक्षिण में अवन्ती पड़ते थे। वत्स प्रदेश में चेदि और भर्ग राज्यों के भी कुछ भाग आ जाते थे। उसके पश्चिम में पञ्चाल पड़ता था जिस पर शायद वत्सों का अधिकार था। वत्स के पश्चिम में शौरसेन प्रदेश पर प्रद्योत के नाती माथुर अवन्तिपुत्र राज्य करते थे। इसके उत्तर में थुलकोट्ठित का राजा एक कुरु था और इसलिए उदयन का ही जाति भाई था। उपर्युक्त प्रमाणों से यह पता चल जाता है कि वत्स कोशल के ही इतना बड़ा राज्य था। जिस तरह मगध कौशल को खा गया उसी तरह वत्स अवन्ती का शिकार बना।

महाभारत के बाद तथा ईसा-पूर्व, एक दो शताब्दी तक इस नगर ने अपना गौरव प्रदर्शित किया। दशार्ण की राजधानी, विदिशा, चन्ड प्रद्योत की राजधानी अवन्ती, उज्जयिनी, श्रावस्ती, वैशाली, कुसुमपुर आदि राजधानियों की श्रेणी में कौशाम्बी अपने अद्वितीय महत्व के कारण अपूर्व गौरवशालिनी मानी जाती है। यह गौरव उस प्रतापी पाण्डव-वंशज सहस्रानीक के पुत्र वत्सराज उदयन के कारण प्राप्त हुआ।

प्राचीन कौशाम्बी के वास्तविक स्थान के सम्बन्ध में पहले कुल विद्वानों में मत भेद रहा, किन्तु अब प्रायः सभी विद्वान् जनरल कनिंघम द्वारा लिखित अपनी यात्रा विवरण में किसी स्थान को प्राचीन कौशाम्बी मानते हैं जिसे प्रयाग जिले में 'कोसम' नाम से पुकारा जाता है।

इस मत का समर्थन श्री शालिग्राम श्रीवास्तव ने नगेन्द्र लाल घोष के अलों हिस्ट्री आव कौशाम्बी से अपनी पुस्तक में लिखा है। यह स्थान प्रयाग से ३३ मील दूर पश्चिम और दक्षिण के कोने में यमुना के उत्तरी तट पर परगना बरारी में है।

प्राचीन काल में यह नगर विद्या-केन्द्र था। यहाँ के विद्यापीठ का वर्णन शतपथ, गोपथ ब्रह्मण तथा तैत्तरीय ब्राह्मण में वर्णित है। पाणिनि के सूत्र और महाभाष्य में भी कौशाम्बी का नाम प्राप्त होता है। कथा सरित्सागर में इस स्थान को 'महापुरी' लिखा है। इसी भूमि को संस्कृत व्याकरण के आचार्य कात्यायन ऋषि को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त है। सम्भवतः इसी लिए इस भूमि के प्रति अतिशय ममता होने के कारण उन्होंने कौशाम्बी-पति उदयन की प्रेम कथा का वर्णन किया।

त्रेतायुग में इसका नाम 'वत्स' व 'वत्सटपन' था। रामायण में वर्णित शृंगवेरपुर जो वत्स देश के नाम से भी पाया जाता है, इसी स्थान से सम्बन्धित है।

कहा जाता है कि चन्द्रवंशीय नरेशों में पुरुरवा से दसवीं पीढ़ी में उत्पन्न प्रसिद्ध राजा कुशाम्ब द्वारा यह नगरी बसाई गई, जिसकी उन्नति और प्रसिद्धि श्री नेमचक्र के समय अधिक हुई। इसका अन्तिम राजा दौमक हुआ था।

बौद्ध धर्म के उन्नतिकाल में यह विशाल नगर अपने चरम विकास को प्राप्त हुआ, जिसका अवशेष अब हमें अपनी पुरानी गाथा सुना रहा है। गौतम बुद्ध ने अपने जीवन का नया वर्षावास यहाँ व्यतीत किया था। बौद्ध ग्रन्थ महापद्य ललितविस्तार में इसका वर्णन है। संस्कृत साहित्य में श्री हर्ष रत्नावली नामक नाटिका तथा मेघदूत और भास के स्वप्नवासवदत्ता में राजा उदयन की कथा के प्रसंग में कौशाम्बी का उल्लेख मिलता है। कहीं-कहीं कौशाम्बी में बुद्ध की मूर्ति स्थापित करने का वर्णन भी मिलता है। सम्राट् अशोक ने भी पश्चिमी राज्यों की देखरेख के लिए यहाँ छोटी राजधानी बनायी थी। कौशाम्बी का वर्णन फाह्यान, ह्वेनत्सांग तथा कनिंघम ने भी अपनी यात्रा वर्णन में उल्लेख किया है।

फाहियान ने अपने यात्र-विवरण में कौशाम्बी का थोड़ा ही वर्णन कर दिया है, परन्तु ह्वेनत्सांग ने विस्तार के साथ लिखा है। यह कहता है कि इस देश का घेरा ६००० ली है, राजधानी ३० ली के फैलाव में है। इसकी भूमि उपज के लिए प्रसिद्ध है। धान और गन्ना खूब पैदा होते हैं। जलवायु अत्यन्त उष्ण है। यहाँ के लोग स्वभाव में उद्दंड हैं किन्तु धार्मिक और पढ़े-लिखे हैं। इस नगर में बौद्धों के १० संघाराम हैं, जो अब उजाड़ पड़े हुए हैं। ३०० के लगभग हीनयान सम्प्रदाय के पुजारी हैं। ब्राह्मणों के ५० देवमन्दिर हैं। उनके अनुयायियों की संख्या भी अधिक है। नगर के एक पुराने महल में एक बड़ा विहार है, जिसकी ऊँचाई ६० फुट है। इसमें महात्मा बुद्ध की एक मूर्ति चन्दन की स्थापित है, जिसके ऊपर पत्थर का एक बड़ा गुम्बद है। यह मूर्ति राजा उदयन ने मुदगलायन-पुत्रों के द्वारा बुद्ध के जीवन काल में ठीक उन्हीं के अनुरूप बनवाई थी। इस विहार में १०० कदम पूर्व चार पुराने कुत्तों के चलने के और बैठने के चिह्न हैं। उसके पास ही एक कूप और स्नानागार है, जिसको बुद्ध भगवान् काम में लाया करते थे। कुएँ में अब तक जल है, किन्तु स्नान घर उजड़ गया है नगर के दक्षिण और पूर्व में पास ही एक और संघाराम है। यह वह स्थान है, जहाँ गोशिरा का उद्यान था। यहीं १०० फुट ऊँचा स्तूप है। यहाँ भगवान बुद्ध ने कई वर्ष रह कर उपदेश दिया था। इसके समीप एक स्तूप है। यहाँ भगवान बुद्ध के केश और नख गड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त अनेक स्तूप, प्राचीन मूर्तियाँ तथा टूटे-फूटे पाषाण बिखरे पड़े हैं। कौशाम्बी के दुर्ग के परकोटा तथा चहारदिवारी के अभी भी चिह्न पाये जाते हैं। इसे यहाँ के निवासी गड़वा कहते हैं।

पुरातत्व विभाग द्वारा कई बार इस स्थान की खुदाई और निरीक्षण किया गया। विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि यह क़िला कच्चा-पक्का दोनों प्रकार का था। दुर्ग की प्राचीर मिट्टी की थी। दुर्ग के बीच में जैनियों ने १८३४ में अपना एक मंदिर बनवाया है।

यहाँ की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक वस्तु एक पत्थर का कीर्ति स्तम्भ है। यह ईंट के एक डीह में पृथ्वी के धरातल से १४ फुट ऊँचा है। यह पहले पाँच इञ्च के झुकाव से खड़ा हुआ था, इसे अब सीधा खड़ा कर दिया गया है। इसके सिरपर एक खंडित लेख तीन अक्षरों में है, जिसे ठीक से पढ़ा नहीं जा सकता।

उदयन की कथा से ज्ञात होता है कि यह नगरी उस काल में अतिशय प्रसिद्ध और विलास की भूमि थी। अवन्ती के विक्रमी राजा की चिरस्मरणीय पुत्री वासवदत्ता तथा मगध राजकुमारी पद्मावती बहू बनकर यहाँ आई थीं। कौशाम्बी के मन्त्री योगन्धरायण की नीति भी बहुत दिनों तक ख्यात थी।

अभिमन्यु-पुस्तकालय, दशाश्वमेध,
वाराणसी—१ (उत्तर-प्रदेश)

—बनारसीलाल आर्य

उत्तर-पूर्वी अफ्रीका के आदिवासी ल-टु-का

नील नदी के पूर्वी किनारे पर लटुका नामक आदिवासी रहते हैं, जो नीग्रो लोगों में सर्वश्रेष्ठ कहे जाते हैं। यह जाति लम्बी तगड़ी तथा अत्यन्त शक्तिशाली है। इनकी झोंपड़ी तिकोनी होती है और दीवार पर गुम्बदनुमा छप्पर होता है। प्रत्येक झोंपड़ी में पशुओं के रहने की अतिरिक्त व्यवस्था रहती है—संभवतः बीच में ही पशु रक्खे जाते हैं।

वस्त्राभूषण : पुरुषों का वस्त्र यहाँ विचित्र होता है; वे कमर के बदले सिर में वस्त्र लपेट लेते हैं। वस्त्र बुनना तो वे जानते नहीं, अतएव वृक्षों के पतले छाल तथा रेशों को बट कर काम चलाया जाता है। कभी कभी तो मोटी छाल को सिर पर बालों के बीच रख कर ललाट पर ताँबे की पतली पट्टी से बाँध दी जाती है, जिसके चारों ओर मनकों की झालरी गुँथी रहती है। स्त्रियों के बाल छोटे-छोटे होते हैं और वे गले में कौड़ी तथा मनकों की हार पहनती हैं। इनकी निचली होंठ से एक प्रकार का लटकन लटकता रहता है, जो धातु की तार में मनका गूँथ कर लटकाया जाता है; ठीक उसी प्रकार जैसे स्त्रियाँ भारतवर्ष में नथ पहनती हैं। कानों में वे लम्बे-लम्बे ऐरन पहनती हैं और रोएँदार लबादा दुपट्टे की भाँति ओढ़ती हैं। मुँह में सामने के चार दाँत उखाड़ कर सौन्दर्य में चार चाँद लगाना इन्हें खूब आता है। शरीर में, विशेष कर गाल, ललाट और सीना पर त्वचा छील कर उभड़े गोदने-गोदवाने की प्रथा यहाँ प्रचलित है। पुरुष लोग गोदना नहीं गोदवाते।

विविध : भाला, गँडासा, तलवार और छुरा इनके प्रमुख आयुध हैं। लगभग पाँच फ़ीट लम्बी ढाल से ये लोग युद्धों में अपनी रक्षा करते हैं। गाय अथवा भैंस के चमड़े की ढाल की लाल और काले रंग की पट्टी से रंग दिया जाता है। स्त्रियों की सामाजिक दशा उनकी अन्य नीग्रो बहनों की ही भाँति है अर्थात् उनका मूल्य पशुओं से अधिक नहीं होता। विवाह के लिए कन्याएँ खरीद ली जाती हैं और उनसे केवल सन्तानोत्पत्ति का ही काम लिया जाता है। उन्हें न तो युद्धक्षेत्र में जाने की आज्ञा है, न पुरुषों की समानता करने का। उनका उपयोग खेतों में कठिन श्रम के लिए भी होता है और बच्चों के लालन-पालन के लिए भी। विवाह का कोई संस्कार नहीं होता, केवल एक स्त्री रख ली जाती है, जो बच्चे पैदा करती है और घर-गृहस्थी भी संभालती है। एक एक पुरुष कई कई स्त्रियाँ रख लेते हैं और मनमाना व्यभिचार करते रहते हैं।

जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसे उसकी झोंपड़ी के बाहर ले जा कर उसी के खेतों में गाड़ देते हैं। उसके सम्मान के लिए हफ्तों तक नृत्य-गान होता है और तब तक शव का माँस डाल कर ठठरी मात्र रह जाती है। नृत्य-गान समाप्त पर शव की अस्थियाँ बाहर निकाल ली जाती हैं और धो-पोंछ कर पुनः एक मृत्तिका पात्र में रख कर गाड़ दी जाती हैं। नर-माँस खान की प्रथा इनमें नहीं है क्योंकि यह जाति खेतिहर है और आवश्यकतानुसार अन्नादि उत्पन्न कर लेती है। पशुओं से दूध इन्हें मिल ही जाता है और शिकार से मछलियाँ तथा वन्यपशु प्राप्त हो जाते हैं।

सुदूर उत्तर अफ्रीका में रहने के कारण यूरोप तथा अरब के लोगों का आवागमन यहाँ लगा रहता है और धीरे-धीरे सभ्यता, विलायती ही सही, का प्रचार होने लग गया है। योरोपियन मिशनरी लोग अपना जाल फैलाए हुए हैं और धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों के नाम पर राजनीति का विष बोती जा रहे हैं।

म-सा-ई : मसाई नामक आदिवासी किलिमैन्जारो प्रदेश में स्थित हैं, जो नील नदी के आसपास है। लटुका लोगों की ही भाँति ये लोग भी डील डौल में राक्षस होते हैं। जिन बालकों को वीर बनाना होता है, उन्हें बाल्यावस्था से ही दूध, रक्त और माँस खिलाया जाता है। युद्धों में उन्हें साथ ले जाया जाता है और नकली युद्ध करके अभ्यास कराया जाता है। इन बालकों का शरीर व्यायाम के कारण हृष्ट-पुष्ट हो जाता है और यौवन के प्रादुर्भाव होते ही वे वज्र शरीर वाले हो जाते हैं। इनके बाल कम घने और लम्बे होते हैं, जिसे वे चर्बी तथा चिकनी मिट्टी से सँवारे रहते हैं। कानों में छेद करके हड्डी या लकड़ी के गुटके पहना दिए जाते हैं

जो दिन-पर-दिन मोटे होते जाते हैं। इनके शरीर का रंग हल्का बैंगनी होता है और जब बालक उत्पन्न होते हैं तो उनका रंग गहरा पीला होता है।

वस्त्राभूषण : स्त्रियों और तरुणों का वस्त्र मुलायम चमड़े का होता है, परन्तु वीर लोग सर्वथा नग्न रहते हैं। वीरों का वस्त्र होता है चमड़े का एक लबादा, जिसमें वे आधा पीठ और आधा वक्ष ढँक लेते हैं। पैरों में चमड़े की चप्पल पहनी जाती है, जो बिना बुझी परन्तु मुलायम चमड़े की होती है। स्त्रियाँ चमड़े की ही घुँघुरूदार लहँगा पहन कर योनि प्रदेश ढँक लेती हैं परन्तु उनके वक्ष सर्वथा नग्न रहते हैं—उन्हें ढँकने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। छोटे बच्चे प्रायः नग्न ही रहते हैं। कुमारी कन्याएँ यौवनोद्भव के पूर्व नग्न ही रहती हैं।

हाथी-दाँत के अभूषण इन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। स्त्रियाँ कानों में बालियाँ, जो मनकों, छोटी सीप तथा लोहे और पीतल की तारों में गुँथी होती हैं—पहनती हैं, इन्हीं वस्तुओं के हार, हँसली आदि भी पहनने की प्रथा है। दाँतों को रेत कर नुकीला करने वाली सुन्दरी का मूल्य यहाँ अधिक होता है। वीर लोग वस्त्र तो नहीं पहनते परन्तु आभूषण अवश्य धारण करते हैं। युद्ध-क्षेत्र में जाते समय वे लोग शुतुर्मुर्ग के पंखों का बना शिरत्राण पहन लेते हैं। कोलोबस नामक बन्दर की पूँछ और चमड़े को वे लोग घुटना, कमर और गरदन में बाँध लेते हैं। कोलोबस बन्दर का शरीर काला और श्वेत धारीदार होता है और इन्हें अत्यन्त प्रिय है। कमर में ये लोग चमड़े की चौड़ी पट्टी बाँधते हैं, जिसमें तलवार और छुरे लटकते रहते हैं। नृत्य के अवसर पर स्त्रियाँ जब कमर में घुँघरू बाँध कर और विचित्र शृंगार कर लेती हैं तो देखते ही बनता है।

आधुनिक भारतीय कॉलेज गर्ल की ही भाँति ये भी दो चोटी बाँधती हैं और लटकन के लिए फुलना या रिबन के स्थान पर सूअर तथा बन्दर की पूँछ का प्रयोग करती हैं, चर्बी से सनी चिकनी मिट्टी द्वारा सँवारी इनकी माँग दर्शनीय होती है, जिन पर मसाई युवक लट्टू होते हैं।

आवास तथा आयुध : झोपड़ियाँ एक लम्बी गोलाई में बनी होती हैं, जिनकी भीतरी दीवाल पर चिकनी मिट्टी तथा बाहरी पर चमड़ा मढ़ा होता है। पृथ्वी पर लकड़ी गाड़ कर फूँस से ढँक कर झोपड़ी बनाई जाती है, जिसमें स्त्री और पुरुष का भिन्न-भिन्न कमरा होता है। बीचोबीच ढोरों का स्थान होता है, बाहरी कमरों में वीर लोग रह कर सारे परिवार की रक्षा करते हैं। भीतरी कमरों की दीवारों पर नाना प्रकार के पशु-पक्षी तथा भूत-प्रेत अंकित होते हैं, जिनमें इनकी अटूट श्रद्धा होती है।

इनके मुख्य आयुध हैं, लम्बे फलवाले भाले तथा कुल्हाड़ियाँ। गैंडे के आर के छुरे भी प्रयुक्त होते हैं जिनसे छोटे छोटे जानवरों की शिकार की जाती है। धनुष बाण का प्रयोग ये लोग नहीं जानते और न तो नाव खेना जानते हैं। गैंडे और भैंस के चमड़े की रंग बिरंगी ढाल रक्षा के लिए व्यवहृत होती है जो प्रायः ५ फीट लम्बी और अण्डाकार होती है।

आहार : यह जाति प्रायः शिकार पर ही जीवन निर्वाह करती है और वन्य-पशु, पक्षी तथा मछलियाँ इनका लक्ष्य होती हैं। ये लोग थोड़ा बहुत खेती भी करते हैं परंतु वीर लोग अन्न और फल फूल हाथ से भी नहीं छूते। प्रायः माँस भून कर या कच्चा ही खा जाते हैं। मुँह नमकीन करने के लिए उसी पशु या पक्षी का ताजा रक्त पी लेते हैं। स्त्रियों और बालकों का अन्नादि में कोई बन्धन नहीं होता। ये लोग दूध भी पीते हैं परंतु दूध का उबालना यहाँ गुरुतर अपराध माना जाता है। इन का पशु-धन गधा भैंस, भेड़-बकरी तथा गाय है जिसे सभी आदिवासी बहुतायत से पालते हैं।

गैंडे का शिकार करना एक व्यक्ति का कार्य नहीं होता अतः कई लोग मिलकर सामूहिक रूप से उसे घेरते हैं और मार डालने पर माँस बाँट लेते हैं। इसी प्रकार कोलोबस बन्दर और शुतुर्मुर्ग का शिकार करके माँस का बँटवारा कर लिया जाता है। शुतुर्मुर्ग का शिकार बहुत कौशल से करना होता है क्योंकि यह पक्षी घोड़े से भी तीव्र गति से दौड़ता है पंखों को तथा कोलोबस बन्दर की पूँछ और चमड़ा बहुत सम्हाल कर रक्खा जाता है। झील और तालाबों में मछली का शिकार छुरे से किया जाता है क्यों कि जाल डालने की रीति इन्हें मालूम नहीं है।

विवाह तथा मृतक संस्कार : वीर लोगों को विवाह करने की आज्ञा यहाँ नहीं मिलती क्योंकि इनका विश्वास है कि घर-गृहस्थी सँभालने वाला व्यक्ति युद्ध-क्षेत्र

के उपयुक्त नहीं रह जाता, रात-दिन शत्रुओं का भय इन्हें लगा रहता है, इसलिए वीर सिपाहियों की एक सेना यहाँ सर्वदा प्रस्तुत रहती है। प्रत्येक घर से कुछ व्यक्तियों का वीरों की सेना में भर्ती होना अनिवार्य है। शेष लोग जन संख्या की वृद्धि करने को स्वतंत्र रहते हैं।

वीरों के लिए मैथुन कर्म अत्यन्त निन्दित कर्म माना जाता है। वे केवल प्रेम कर सकते हैं, विवाह नहीं कर सकते। वे लोग इसी कारण कुमारी कन्याओं को अपने पास रख कर अपना मनोरंजन करते हैं। कुमारी कन्या को इनकी भाषा में 'डिट्टो' कहते हैं और जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता, तब तक वे किसी न किसी वीर की अंकशायिनी अवश्य रहती हैं।

विवाह का यहाँ कोई संस्कार तो होता नहीं, केवल एक स्त्री को घर में डाल लिया जाता है। जिस स्त्री के दाँत जितने नुकीले तथा बाल जितने लम्बे और सजे होते हैं, वह उतनी ही सुन्दरी मानी जाती है और उसका उतना ही अधिक मूल्य होता है। विवाह की यहाँ कोई निश्चित आयु नहीं होती, हाँ वर और कन्या का युवक युवती होना अनिवार्य है। साधारणतया कन्याएँ यहाँ अल्प आयु में ही युवती हो जाती हैं। भारतवर्ष से भी अधिक गर्म देश है अफ्रीका और इसी कारण आठ, नौ अथवा दस वर्ष की होते होते यहाँ लड़कियाँ रजस्वला होने लगती हैं और उनका यौवन फूलने लगता है।

जब विवाह करना होता है तो एक पंचायत बैठती है और भावी वर कन्या का पूर्व निश्चित धन (सूअर की दाँत, हाथी दाँत, गधे और शुतुर्मुर्ग के पंख तथा गैंडे का चमड़ा) अपने तथाकथित श्वशुर को देता है। कन्या का पिता अपनी पुत्री को भी प्रायः यही सब वस्तु तथा उसका षोडश-शृंगार करके वर को देता है और वह सहर्ष अपनी परिणीता को अतिशीघ्र घर ले आता है।

ससुराल आकर वधू अपने पूर्व निश्चित कक्ष में चली जाती है और वर महाशय भी एकान्त की उत्कट अभिलाषा लिए इधर उधर डोला करते हैं। रात्रि होते ही वधू अपनी सास के पास चली जाती है और वर कलेजा पत्थर का किए अलग सो जाता है। प्रातः होते ही दम्पति घर से बाहर निकल जाते हैं और किसी झील अथवा नील के कहीं किनारे पर अपनी प्रिया के साथ यौवन की चिरसंचित साध पूर्ण करते हैं। जब तक प्रिया के साथ समागम नहीं हो जाता तब तक वह मोहिनी रहती है, नशा उतर जाने पर पैरों की रज।

यह बात विचित्र सी प्रतीत होती है कि ये लोग या तो स्त्री संग करते ही नहीं या यदि करते हैं तो उसे कुतिया बना डालते हैं। इनकी वासना इतनी तीव्र होती है कि जब एक को गन्ने की गंडेरी की भाँति चूस लेते हैं तो पुनः एक दूसरी गंडेरी ढूँढ़ते हैं। इसीलिये यहाँ साधारणतया कम से कम दो पत्नियाँ तो प्रत्येक व्यक्ति रखता है। सरदारों के यहाँ तो कई स्त्रियाँ रहती हैं जो उनकी पद प्रतीष्ठा के लिए आवश्यक समझा जाता है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि स्त्रियों की सामाजिक दशा पशुतुल्य है, बल्कि कहना चाहिए कि पशुओं से भी गई-बीती है क्योंकि पशुओं का कुछ मूल्य तो होता ही है। स्त्रियाँ घर-गृहस्थी का सारा काम करती हैं, खेतों में लगी रहती हैं और अवकाश के क्षणों में अपने स्वामी की वासना पूर्ति का साधन बनती हैं। उनका दुःख-दर्द पूछने वाला कोई नहीं होता रोग शोक यदि होता है तो वह भूत-प्रेत तथा हुतात्माओं का कोप माना जाता है।

भगवान कहाँ होते ही नहीं इसलिए भूत-प्रेत तथा टोने-टोटके का बोलबाला है। इनकी पूजा अर्चना के लिए नाना प्रकार के बलि प्रदान होते हैं और विचित्र वेष भूषाओं में सामूहिक नृत्य गानादि द्वारा उन्हें संतुष्ट किया जाता है। ओझाइतों की वहाँ चाँदी रहती है और भूतनाथ के स्थान का उन्हीं का सम्मान होता हैं। प्रत्येक गाँव में एक मुख्य ओझा रहता है और वह रात दिन भूत-बैताल की पूजा अर्चना करके उनके कोप से कबीले की रक्षा करने में सतत प्रयत्नशील रहता है।

मृतक संस्कार नाम की कोई वस्तु नहीं होती। जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो कबीले के लोग उसे उसकी झोपड़ी से बाहर निकाल कर खेतों के बीच में ले आते हैं। एक सार्वजनिक वृक्ष के नीचे शव को बैठा कर उसकी ठुड्डी उसके घुटनों के बीच रख दी जाती है। तब कब्र खोदी जाती है और शव को उसी स्थिति में उठा कर कब्र में रख कर ऊपर से पत्थर रख दिया जाता है। शव के अगल बगल मृत्तिका पात्रों में थोड़ा दूध, ताजा रक्त तथा कुछ माँस रख दिया जाता है।

वैतरणी पार करने के साथ ही कुछ चबेना चाहिए रक्खा जाता है। 'गतासूनगतासूँश्च नानुशोचन्ति इसीलिए दूध, रक्त तथा माँस रक्खा जाता है; स्त्रियों पण्डिताः' के अनुसार मृतक व्यक्ति का नाम कोई और घर-गृहस्थों के शव के साथ कुछ फल-फूल भी नहीं लेता।

प्राणी-शास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-५

—रामसिंह

तेलुगु कहावतें

१ नदि दाटे दाक बोट्टु मल्लय्य, नदि दाटिन तरुवान बोडिमल्लय्य
नदी पार होने तक नाव का मल्लय्य, नदी पार होने पर गंजा मल्लय्य।

२ एंत चेट्टु कंत गालि-
जितना पेड़ हो उतनी हवा

३ अत्ता ओकिटि कोडले-
सास भी एक घर की बहू।

४ ऊल्लो पेंडलि, कुक्कलकु संदडि-
गाँव में शादी हो तो कुत्तों में हलचल

५ इंट गेलिचि रच्च गेलु
घर में जीतकर, बाजार में विजय प्राप्त कर

६ नलुगुरितो पाटु नारायण
चारों के साथ 'नारायण' का स्मरण। (चार लोग जिस तरफ हों उसी तरफ।)

७ पिट्ट कोंचमु, कूत घनमु
चिड़िया छोटी, बोल बड़ी (छोटा मुँह, बड़ी बात)

८ दुन्न ईनिंदिरा अंटे, दूडनु कट्टेय्यमन्नट्लु
भैंसे ने बच्चा जना तो पड़वे को बाँध दे (मूर्खता सूचक)

९ अंदरु पल्लकी एक्किने, मोसेदेवरु
सब पालकी पर बैठें, तो ढोये कौन?

७७-९ जीरा कम्पाउण्ड,
सिकन्दराबाद

—कात्यायनी देवी

पाणिनि की दृष्टि में क्रिया की विभिन्न अवस्थाएँ

आचार्य पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में क्रिया के कतिपय भेदों का उल्लेख मिलता है, जिनका ज्ञान अत्यावश्यक है। हिन्दी के व्याकरण की रचना के लिए भी इस विषय का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि हिन्दी शब्द प्रयोग क्षेत्र में भी यह विषय आपतित है।

क्रिया का लक्षण क्या है, इसकी उत्पत्ति आदि कैसे होती है, इत्यादि विषयों पर पाणिनि मौन हैं। उनका मनोभाव यह है कि यह विषय सर्वथा लोक गम्य है, और लोक व्यवहार में ही इन विषयों का निर्णय करना चाहिए। इसी दृष्टि से हमने भी यहाँ केवल भेदों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, उन पर दार्शनिक दृष्टि से कुछ भी विचार नहीं किया है। आशा है कि इस विषय में रुचि रखने वाले विद्वानों के लिए यह निबन्ध पठनीय होगा तथा वे इस विषय को पूर्णांग बनाने के लिए यत्न करेंगे। निबन्ध में संक्षिप्तता लाने के लिये कुछ ही उदाहरण दिए गए हैं, और प्राचीन व्याख्यान ग्रन्थों के अनुसार ये उदाहरण भी हैं। अनेक स्थलों पर केवल उदाहरण को देखकर ही लक्षण का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि हमने पूर्वाचार्यों के लक्षण भी यथास्थान दे दिए हैं।

(क) क्रिया समभिहार : क्रिया समभिहारे यङ् (३ १।२२) सूत्र में समभिहार रूप क्रिया की एक अवस्था वर्णित है। समभिहार के दो अर्थ हैं 'बार-बार होना' तथा 'अतिप्रकाश' (पौनः पुन्यं भृशार्थो वा क्रियासमभिहारः, काशिका)। (भृशार्थ=प्रकर्षातिशय) शंका होगी कि क्रिया तो अवयवभूत क्रियाओं की समष्टि है और प्रत्येक क्रिया क्षणव्यापिनी है (तत्त्वतः), अतः क्रिया का स्वरूप सदैव एक रूप ही रहेगा, उसमें प्रकर्ष (=भृशता) कैसे संभव हो सकता है? पतंजलि ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है। यथा —'यद्यप्येका सामान्य क्रिया, अवयव क्रियास्तु बह्व्यः ××× ताः कश्चित् कार्त्स्न्येन करोति, कश्चिद् अकार्त्स्न्येन' अर्थात् एक क्रिया की अनेक अवान्तर क्रिया होती हैं, और उन सब अवान्तर क्रियाओं को कोई जब पूर्णतः करेगा (एक का भी परित्याग नहीं करेगा) तब वह क्रिया भृश होगी और जब अपूर्ण रूप से किया जायगा, तब भृश नहीं होगी। इसी अर्थ को और भी स्पष्ट रूप से विट्ठल ने कहा है—'एक प्रधाने क्रियाया अधिश्रयणादिकायाः साकल्येन सम्पत्तिः (प्रसादटीका), अर्थात् पाकक्रिया के अन्तर्गत क्रियाओं का पूर्णतः करने से क्रिया भृश होती है। विट्ठल ने यह भी दिखाया कि यह समभिहार मुख्य नहीं है, क्योंकि क्रिया अमूर्त है और युगपत् काल भाविनी भी नहीं है। उन्होंने इसलिए भृशार्थ के लक्षण में 'फलातिरेको वा' भी कहा है, अर्थात् फल का आधिक्य हो, वहाँ क्रिया को भृश समझना चाहिए, क्योंकि क्रिया में भृशता न हो, तो फल का अतिरेक नहीं हो सकता।

(ख) क्रिया-पौनःपुन्य : यह समभिहार का दूसरा अर्थ है। इसके लक्षण में विट्ठल ने कहा है : 'प्रधान-क्रियायाः पचनादिकायः क्रियान्तरव्यवधानेन आवृत्तिः पौनःपुन्यम्' (प्रसादटीका) अर्थात व्यवधान के साथ एक ही क्रिया जब बार-बार होती है, तब वहाँ पौनः पुन्य होता है।

(ग) क्रिया सातत्य : क्रिया की सातत्यिकता, अर्थात अविच्छेद से होते रहना। 'अपरस्पराः क्रिया-सातत्ये' (६।१।१४४) सूत्र में इस शब्द का प्रयोग है। 'अपरस्पराः गच्छन्ति' का अर्थ होगा 'अविच्छेदेन गच्छन्ति' अर्थात् गमन क्रिया में कोई विच्छेद नहीं है।

पौनःपुन्य और सातत्य में भेद यह है कि पौनःपुन्य में व्यवधान के बाद आवृत्ति होती है और सातत्य में अविच्छेद रूप से क्रिया का प्रवाह चलता है।

(घ) क्रियाव्यतिहार : कर्तरि कर्मव्यतिहारे (१।३।१४) सूत्र में क्रिया के इस भेद का उल्लेख है (यद्यपि सूत्रकार ने कर्मव्यतिहार कहा है, तथापि यहाँ कर्म=क्रिया ही है, जैसा कैयट ने युक्ति से समझाया है[1]। व्यतिहार=विनिमय (काशिका) अर्थात एक का योग्य

---

१. क्रियायाः साध्यत्वात् प्राधान्यात् क्रिययाप्तुमिष्टतमत्वात् ××× कर्मग्रहणात् क्रियाव्यतिहारोऽत्र गृह्यते, क्रियायाः धातुवाच्यत्वाद् अन्तरङ्गत्वात् (प्रदीप)।

कार्य अन्य से करना, जैसे 'व्यतिलुनीते' क्रिया का अर्थ होगा : शूद्रयोग्य शस्यादिकर्तन ब्राह्मण करते हैं। शंका हो सकती है कि क्रिया तो साध्यैक स्वभाववाली होती है और क्षणमात्र व्यापिनी भी, अतः व्यतिहार कैसे हो सकता है? उत्तर में वक्तव्य है कि यहाँ क्रियाव्यतिहार से 'साध्य साधनभाव का व्यत्यास' विवक्षित है, अतः यह उपपन्न होता है, जैसा कि कैयटाचार्य ने कहा है : 'क्रियाणां साध्यैकस्वभावत्वात् कथं व्यतिहार इति चेत्? योग्यतावशाद् अस्येयं क्रिया साध्या अस्या इयं साधन मिति निर्ज्ञाते साध्य-साधन-भावे यो व्यत्यासः स क्रिया-व्यतिहारः' (प्रदीप)।

क्रिया व्यतिहार की अन्य व्याख्या भी है। वह है : 'परस्पर करणम्'। उदाहरण के साथ कैयट ने यह समझाया है, यथा : 'परस्परकरणमपि क्रियाव्यतिहारः, यथा संप्रहरन्ते राजानः, अन्त एकैव क्रिया संचारिणीव लक्ष्यते' (प्रदीप) अर्थात् परस्परकरण भी क्रियाव्यतिहार है, जैसा राजा लोग परस्पर प्रहार कर रहे हैं। यहाँ प्रहार रूप एक ही क्रिया सचारिणी हो कर चलती है। यहाँ एक का कार्य दूसरा करता है, यह बोध नहीं होता, और मालूम पड़ता है कि एक ही क्रिया हो रही है।

लक्षणहेत्वोः क्रियायाः (३।२।१२६) सूत्र में दो प्रकार के क्रिया भेदों का उल्लेख है : (क) लक्षणात्मक क्रिया तथा (ख) हेत्वात्मक क्रिया।

(ङ) **क्रियालक्षण क्रिया :** क्रिया लक्षण=क्रिया-ज्ञापक=क्रिया का परिचायक। उदाहरण यथा-शयाना भुञ्जते यवनाः (यवन लेट कर भोजन करते हैं)। यहाँ भोजन कालीन शयन क्रिया यह सूचित करती है कि भोक्ता यवन है, अत यहाँ क्रिया 'परिचायका' है।

लक्षणात्मिका क्रिया के विषय में व्याख्याकारों ने यह कहा है कि क्रिया कभी कभी क्रियान्तर का भी ज्ञापक होती है, और कभी कभी कारक का भी। जब कहा जायगा 'तिष्ठन् मूत्रयति' (=खड़ा होकर लघुशंका कर रहा है) तब स्थित क्रिया मूत्रणक्रिया की परिचायक होती है। यहाँ यह भी जानना चाहिए कि कभी कभी एक कर्ता के साथ दोनों क्रियाओं का कथन होने मात्र से वे दो क्रिया एक दूसरे का लक्षण नहीं भी हो सकती है और वे कर्ता का ही लक्षण बनती हैं-यह भाष्य में स्पष्ट है।

कभी कभी लक्षण का अर्थ ज्ञापक न होकर तत्त्व का आख्यान परक भी होता है, और पाणिनि को यह लक्षण भी इष्ट है। वस्तुतः क्रिया जैसे क्रिया की ज्ञापिका होती है, वैसे साधन की भी ज्ञापिका होती है और इस सूत्र में यह अर्थ भी लिया जा सकता है, यद्यपि साधन के लक्षण स्थल में भी क्रिया क्रिया का लक्षण भी बनी रहती है। जैसा कि भाष्यकार ने उदाहरण देकर समझाया है।

(च) **हेत्वात्मक क्रिया :** एक क्रिया अन्य क्रिया का हेतु भी होती है, जैसे 'अर्जयन् वसति' (=अर्जन के लिये बैठता है)। इस सूत्र में हेतु का अर्थ फल भी है, कारण भी है। 'अर्जयन वसति' में अर्जन में वास हेतुत्व है, और जब 'हरिं पश्यन् मुच्यते, (= हरि को देख कर मुक्त होता है। कहा जाता है, तब हरि दर्शन क्रिया मुक्तिक्रिया का कारण बनती है।

(छ) **क्रिया-प्रबन्ध :** इसका उल्लेख 'नानद्यतन-वत् क्रिया प्रबन्ध सामीप्ययोः' (३।३।१३५) सूत्र में है। क्रिया प्रबन्ध= क्रिया का सातत्य अर्थात् अनुष्ठान का त्याग करना जैसे 'यावज्जीवं भृशमन्नम् अदात्' इस वाक्य में अन्नदान रूप क्रिया का सातत्यानुष्ठान प्रतिपादित होता है। यहाँ का सातत्य प्रागुक्त सातत्य से भिन्न है, क्योंकि यहाँ के सातत्य का अर्थ है 'उस क्रिया का परित्याग न करना' न कि सतत उसको करना। अन्न दान क्रिया अविच्छेद से नहीं चल सकती।

(ज) **क्रिया-सामीप्य :** ३।३।१३५ सूत्र में ही इस भेद का उल्लेख है। सामीप्य= तुल्य जातीय क्रिया से अव्यवधानः जैसे यदि यह कहा जाय 'येयं पौर्णमासी अतिक्रान्ता तस्याम् अग्नीन आधित' (यह जो पौर्णमासी अतिक्रान्त हुई, उस में अग्नियों का आधान उसने किया था) तो यहाँ क्रिया का सामीप्य होता है, क्योंकि यद्यपि यहाँ पौर्णमासी के बाद कृष्ण पक्ष आने से कुछ अहोरात्र की स्थिति होने के कारण व्यवधान होता है, पर चूँकि यह व्यवधान सजातीय पदार्थ का नहीं है, अतः यहाँ क्रिया का सामीप्य है।

(झ) **क्रियातिपत्ति :** इसका उल्लेख 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३६) सूत्र में है। क्रियाति-पत्ति=कुतश्चिन्निमित्तात् क्रियाया अनिष्पत्तिः, उद्द्योत) अर्थात् किसी निमित्त से क्रिया की निष्पत्ति न होना, जैसे 'सुवृष्टिश्चेत् अभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत (=यदि सुवृष्टि होगी, तो सुभिक्ष होगा) इस वाक्य में भिक्षा मिलने

की क्रिया की अनिष्पत्ति—वृष्टि सापेक्षता का कारण—कही गई है।

भाष्य में यहाँ 'साधनातिपत्ति' पर विचार किया गया है। उनका कहना है—'नान्तरेण साधन क्रियायाः प्रवृत्तिरस्ति। साधनातिपत्तिश्चेत् क्रियाऽतिपत्तिरपि भवति। तत्र क्रियातिपत्तावित्येव सिद्धम्, अर्थात् यदि क्रियातिपत्ति का स्वीकार न कर साधनातिपत्ति मानी जाय, तो वह भी क्रियातिपत्ति में अन्त मुक्ति होगा, क्योंकि साधन के बिना क्रिया होती नहीं, अतः जहां साधनातिपत्ति है, वहाँ क्रियातिपत्ति अवश्य होगी, अतएव क्रियातिपत्ति कहना ठीक ही है।

(ञ) क्रियार्थो क्रिया : क्रिया का यह भेद 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' (२।३।१४) सूत्र से विज्ञात होता है क्रियार्थी क्रिया='क्रिया के लिये क्रिया'। जैसे 'फलेभ्यो याति वाक्य में, फलाहरण क्रिया' के लिए 'गमनक्रिया' विवक्षित है। शंका होगी कि यहाँ तो गमनक्रिया फल के लिए है। अतः वह 'क्रियार्थाक्रिया' कैसे हुई? उत्तर यह है कि पूर्वोक्त वाक्य में गमनक्रिया वस्तुतः आहरणक्रिया के लिए ही है, और आहरण का कर्म फल है, अतः यह वस्तुतः क्रियार्था क्रिया ही है।

(ट) क्रियाभ्यावृत्ति : इसका उल्लेख 'संख्यायाः क्रियाकथावृत्तिगणने कृत्वसुच' (५।४।१७) सूत्र में है। इसका अर्थ है 'क्रिया का जन्म'। अतः यहाँ क्रियाजन्म की गणना रूप एक तथ्य प्राप्त होता है। इस सूत्र में यह शंका होती है कि संख्या शब्दों की ही तो गणना में वृत्ति होती है, अतः सूत्र में संख्या शब्द का पृथक् उल्लेख क्यों किया गया? दूसरी शंका यह है कि अभ्यावृत्ति तो क्रिया की ही होती है, क्योंकि क्रिया का विषय साध्यार्थ है। द्रव्य और गुण तो सिद्ध भाव है और जहाँ द्रव्य और गुण का पुनः पुनः जन्म कहा जाता है। (जैसे पुनः पुनः दण्डः, पुनः पुनः स्थलः इत्यादि वाक्यों में) वहाँ भी अस्तित्व क्रिया की उत्पत्ति ही बार-बार उत्पत्ति विवक्षित होती है, अतः 'क्रियाभ्यावृत्ति' कहने की सार्थकता क्या है?

पहले प्रश्न के उत्तर में वक्तव्य है कि कहीं-कहीं निश्चित संख्या के अभाव में भी अभ्यावृत्ति होती है, जैसे 'भूरिवारान् भुङ्क्ते' इस वाक्य में भूरि=बहु और वार=समभिव्याहृत क्रिया पर्याप्त काल है, अतः वाक्य का अर्थ होगा—बहुकाल में व्याप्त भोजन क्रिया, अर्थात् यहाँ भोजन बहुत्व का बोध होता है, क्योंकि वार शब्द गणनावाची नहीं है और भूरि शब्द भी संख्या वाची नहीं है। इस प्रकार संख्याबोध जहाँ न होगा, वहाँ यह सूत्र प्रवृत्त न हो जाए, इसलिए गणन और संख्या शब्द का एकत्र प्रयोग है।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में वक्तव्य यह है कि अभ्यावृत्ति क्रिया की ही होगी, अतः वस्तुतः इस सूत्र में क्रिया ग्रहण व्यर्थ है, पर उत्तर सूत्रों में क्रिया पद की चरितार्थता है, इसलिए सूत्रकार ने यहीं 'क्रिया' शब्द का उल्लेख कर दिया है। यह समाधान टीकाकारों ने दिया है, पर इसमें सन्देह है।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक गौण क्रियाभेदों का उल्लेख भी 'अष्टाध्यायी' में है, पर संक्षेपार्थ उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा रहा है।

टीकमणि संस्कृत कालेज,
दशाश्वमेध, बनारस

—रामशंकर भट्टाचार्य

तीन हजार शहद की मक्खियों ने ग्राम के डाक के एक डब्बे में अपना छत्ता बना लिया। उस डब्बे में से चिट्ठियों को निकालना असंभव हो गया। अन्त में धुआँ देकर मधु-मक्खिकाओं को भगाया गया और छत्ते को नष्ट कर दिया गया। डब्बे में से केवल दो पत्र ही निकले।

—'इंग्लिश डाइजेस्ट' से

प्राचीन परम्परा-नवीन प्रवृत्तियाँ

प्राचीनता और नवीनता की होड़ जिस प्रकार आचार विचार, वेशभूषा और रुचियों में लगी रहती है, वैसे ही साहित्य में भी परिलक्षित होती है। कुछ लोगों का विचार है; कि प्राचीन संप्रदाय ही उत्तम हैं; कुछ का मत है कि नवीनता ही प्रगति का लक्षण है। एक दल वालों का दूसरे दल वालों का मज़ाक उड़ाना, उपेक्षा करना साधारण सी बात है। इस प्रकार कहने वाले भी कुछ लोग हैं जो प्राचीन कवियों की रचनाओं को ही कविता मानते हैं और आधुनिक कवियों की रचनाओं को बकवास। उनके लिये रामायण, महाभारत आदि पौराणिक काव्य ही पर्याप्त हैं, दूसरी कथाओं से मतलब ही नहीं। नवीनता के प्रेमियों को प्राचीनता से चिढ़ है। प्रबन्ध काव्य निर्जीव हो गये हैं अतः नल दमयन्ती, हरिश्चन्द्र आदि पौराणिक और प्रबन्ध नायक-नायिकाओं को पेन्शन दे देना समीचीन है, ऐसा इन का मत है।

ये विचार-धाराएँ आज की नहीं हैं: पीढ़ियों से चलती आ रही हैं। महाकवि कालिदास के समय में भी प्रचलित थीं, ऐसा 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना से विदित होता है। कालिदास के नाटक का अभिनय करने की प्रस्तावना करने वाले सूत्रधार की बातों का तिरस्कार करते हुए पारिपार्श्विक कहता है कि भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि पूर्व कवियों की रचनाओं को छोड़, आज के कवि कालिदास की रचनाओं को कौन सामाजिक पसंद करेंगे? उसके उत्तर में सूत्रधार कहता है: "न-पुराणमित्येव साधु सर्वम्,"

पक्षपात रहित सामाजिक प्राचीन और नवीन, दोनों में से गुण का ही ग्रहण करता है। रस जहाँ हो, उसका आस्वादन करता है। सजीव साहित्य, केवल प्राचीन परम्पराओं का ही अनुकरण नहीं करता। नवीन प्रवृत्तियों के अभाव में, मान लीजिए कि वह (साहित्य) ह्रास को प्राप्त हो रहा है। प्रतिभा तो नवनवोन्मेषशाली है न!

साहित्य में परिवर्तन केवल लेखकों के व्यक्तित्व पर ही आधारित नहीं रहता। कविता का नियमरहित होना, अनन्य परतन्त्र होना आदि लक्षण कुछ सीमा तक ही सत्य हैं। संपूर्ण स्वातन्त्र्य पर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्यत्र संभव नहीं है। साहित्य का संबंध किसी जाति की संस्कृति से होता है। सामाजिक, धार्मिक और नैतिक नियम, आर्थिक एवं राजनैतिक सिद्धान्त, नित्याचार व अनुष्ठान, कलाएँ, साहित्यिक प्रथाएँ, इन सब की समिष्टि ही संस्कार (संस्कृति) है, जो अविभाज्य है। किसी भी जाति के संस्कारों का ज्ञान रखे बिना, उक्त जाति का साहित्य समझ में नहीं आता। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का थोड़ा बहुत ज्ञान रखे बिना, पाश्चात्य वाङ्मय पूरी तरह से समझ में नहीं आएगा किसी जाति का संस्कार, दूसरी जातियों के संस्कार और विज्ञान के संपर्क में आने पर, थोड़ा-बहुत परिवर्तित होता है। कभी कभी विदेशी-संस्कृति के लिए अधिक आदर होने से, स्वदेशी-संस्कृति के आदर कम हो जाता है। पर ऐसा बहुत ही कम होता लिए है जब कि वह आदार और गौरव पूरा खत्म हो जाय। विदेशी-संस्कृति पर मोह कम हो जाने पर, फिर से अपनी संस्कृति के लिए मान बढ़ जाता है लेकिन तब तक वह संस्कृति यथापूर्व नहीं रहती उस में नवीन अंश मिले रहते हैं। साहित्य में भी यह परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

इस में कोई संदेह नहीं कि पाश्चात्य वाङ्मय के संपर्क से आन्ध्र साहित्य में कई नई प्रवृत्तियाँ आई हैं। काव्य-भेदों में, वस्तु विधान में, दृष्टिकोण में, रचना विधान में, भाषा-शैली में, सब में, ये नई प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। इनका ब्यौरेवार वर्णन करना चाहें तो एक बड़ा ग्रन्थ हो जाएगा इसलिये संक्षेप में, उन प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करूँगा।

प्रचीन पद्धति के अनुसार पद्य काव्य के इतने भेद हमारे यहाँ नहीं हैं। पुराण, प्रबन्ध और शतक, ये तीन ही प्रमुख हैं जिन में पहले दोनों का इतिवृत्त निनि न्यानवे प्रतिशत प्रख्यात ही है। 'कला पूर्णोदय' जैसे काव्य बिरले ही हैं जिनका इतिवृत्त कल्पित है। साधारणतया ये पुराण और प्रबन्ध काव्य चंपू ही होते हैं पर उन में पद्य की ही अधिकता है। शतकों की वस्तु

भक्ति और वेदान्त ही है। कुछ नीतिपरक भी हैं। कवि चौडप्प शतक, वेणुगोपाल शतक आदि निन्दा, आक्षेप और परिहास से भरे हैं।

नवीन कविता में प्रथमतः उल्लेखनीय 'खंड काव्य' हैं, जो पाश्चात्य साहित्य के 'लिरिक' पर आधारित हैं। प्रचीन पद्धति में इनके अभाव के कारण, लक्षण ग्रन्थों में इनके लक्षण नहीं मिलते हैं। इस प्रकार की खंड काव्यात्मक रचना के लिए भाव-कविता'[1] का नाम प्रचलित हो गया। आत्म परक, व्यंग्य प्रधान, एक भावाश्रय लघुरचना ही भाव-कविता है, इस प्रकार किसी आलोचक ने इस नई कविता की परिभाषा लिखी है। व्यक्ति गतानुभव ही इस काव्य का प्राण है। वह व्यक्ति स्वयं कवि ही होता है या कवि द्वारा चित्रित कोई पात्र। श्री गुरजाडा अप्पाराव के 'मुत्यालसरालु', श्री रायप्रोलु सुब्बाराव जी के 'तृणकंकण' व 'लालिता' इसी श्रेणी के काव्य हैं। उनके बाद शिवशंकर शास्त्री, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, दुव्वूरि रामिरेड्डी आदि कवियों ने इस काव्य को खूब उन्नत बनाया है।

प्रणय परिणाम, प्रकृति सौभाग्य, प्रकृति और कवि का संबंध, भाव प्रधान्य आदि इनके काव्यों में भरे पड़े हैं। प्राचीन सांप्रदायिक लक्षण इन में दीखते नहीं हैं। लेकिन इन 'भाव कवियों' ने प्रचीन कविता सामग्री को बिलकुल छोड़ दिया हो, ऐसी बात नहीं है। कविसमय, अलंकार और मुख्य रूप से भाषा, प्राचीनों की ही है। पर दृष्टिकोण में अन्तर होने के कारण, वे ही नये दिखाई पड़ते हैं। नारि नरसिंह शास्त्री ने कहा "इस दुनिया में विचित्रता इसी बात में है कि प्राचीन ही फिर से नवीन सी दिखाई पड़ती है। उसी प्रकार की नूतनता ही आजकल की तेलुगु कविता में है।" विश्वनाथ सत्यनारायण जी की परिभाषा है: "प्राचीन आलंकरिकों द्वारा वर्णित पद्धतियों में विवरण का ही अन्तर है दरअसल मूल वस्तु में कोई अन्तर नहीं है।"

काव्य की वस्तु में कुछ नवीनता अवश्य दिखाई पड़ती है। साधारण जनता के दुःख-सुख, मजदूर किसानों का जीवन, विषादान्त प्रणय आदि इस नवीन वस्तु विधान के अन्तर्गत आते हैं।

नवीन काव्य परिणाम में यह प्रथम घटना है। दूसरी Stage में यथार्थवाद शुरू हुआ, जिसने धीरे-धीरे समस्त काव्य-जगत् को प्रभावित किया। यथार्थ की ऊपरी सीढ़ी अति यथार्थ है। अभ्युदय-रचना (प्रगतिवादी रचनाएँ) इस परिवर्तन से संबंधित है। इस मार्ग के पथ प्रदर्शक 'श्री श्री' ने कहा है कि क्रान्तिकारी व्यक्ति साहित्य जगत् में भी हैं। इनका सन्देश है कि कुछ लोगों की मुट्ठी में बँधी धन-दौलत और विज्ञान को असंख्य जनता को सुलभ-साध्य बनाकर, सामाजिक जीवन को सुख प्रद और शुभप्रद बनाएँ, पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाना, इन का ध्येय है। सारी जनता को शीघ्रता से प्रगतिशील बनाने वाली कविता लिखनी चाहिए, समाज को आगे बढ़ाना ही बिप्लव पंथ का लक्षण है, यही अभ्युदय रचना का भी लक्ष्य है।" श्री श्री, नारायण बाबू, दाशरथि, अनिसेट्टी आदि कवियों की रचनाओं में वेदना और आवेग अधिक मात्रा में लक्षित होते हैं।

अतियथार्थ कविता ने अति नवीन मार्ग का अनुसरण किया है। अर्थ की आवश्यकता नहीं है। छन्दों के बन्धनों को तोड़ डालना चाहिए। गद्य और पद्य में भी अन्तर नहीं होना चाहिए। श्री श्री ने कहा :—

"अर्थ को दुर्गम जंगलों में छोड़, गद्य और पद्य की शादी करें।" और पठाभी ने कहा :—

"मैं अपने इन वचन—पद्यों के लट्ठों से,
पद्यों की कमर तोड़ डाल दूँगा।"

इनकी तेलुगु कविता में पर्याप्त मात्रा में अंग्रेजी शब्द भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिये :—

"क्रासवर्ड (Cross-word) पजल
(Puzzle) की समता करने वाले
तेरी आँखों को सौल्व (Solve)
करने का महा भाग्य, है किस मानव का?"

अतियथार्थवाद का समर्थन करते हुए श्री रंगम् नारायण बाबू ने लिखा—"साहित्य में 'अतिवास्तविकता' (अतियथार्थवाद) खुले हुए मंत्रकवाट के समान है। साहित्य में एक नया दृष्टिकोण है। धार्मिक विचार धारा में जो स्थान अद्वैत सिद्धान्त का है, वही स्थान साहित्यिक विचार धारा में 'अतिवास्तविकता' का है। इससे मानव का और समाज का कल्याण होगा, ऐसा विश्वास

१. तेलुगु में 'भाव-कविता' के लक्षण, हिन्दी काव्य में छायावाद के समान ही हैं।

रख कर, हम रचना कर रहे हैं। लाभ नहीं होगा, ऐसा जाने बिना, इसे छोड़ देना, हमें पसन्द नहीं है।" इन बातों को लिख कर बहुत दिन हो गए। पता नहीं अब क्या कहेंगे?

आन्ध्र-साहित्य-संसार में, पुराने जमाने में, गद्य का कोई विशिष्ट स्थान नहीं था। पुराणों के चंपू-काव्य होने से, बीच-बीच में गद्य रचना है पर प्रत्येक रचना इसी प्रकार की नहीं है। दक्षिण-आन्ध्र-साहित्य में कुछ इतिहास, स्थलमाहात्म्य, वचन-रचनाएँ विद्यमान हैं पर गद्यरचना बहुत स्वल्प है। आधुनिक काल में ही, आन्ध्र-साहित्य में, गद्य को प्रधानता मिली है। पाश्चात्य वाङ्मय के गद्यकाव्य भेदों ने हमारे लेखकों को आकर्षित किया है। 'नव्यान्ध्र कविता पितामह' के नाम से प्रसिद्ध वीरेशलिंगम पन्तुलु ने अधिक मात्रा में गद्य-रचना की है। उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, जीवन-कथाएँ, आत्मकथा सबको आपने गद्य में ही लिखा है। उनके बाद के लेखकों ने उपन्यास और कहानियाँ अधिक लिखी हैं। दूसरे प्रकार की गद्य रचनाएँ अधिक नहीं हैं। कुछ साहित्यिक आलोचनात्मक निबन्ध और कुछ ऐतिहासिक निबन्ध उत्तमश्रेणी के बन पड़े हैं। पर, हलके और मनोरंजक, स्वानुभवयुक्त, लघु निबन्ध बहुत कम हैं। हाल ही में प्रकाशित 'माटा-मंती' (श्री नार्ल-वेंकटेश्वरराव की लिखी) अच्छी बन पड़ी है।

उपन्यास और कहानी साहित्य की नई प्रवृत्तियाँ होने पर भी, इनमें भी प्राचीन पद्धति और नवीन प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हो सकती हैं। प्रारंभिक उपन्यास, बहुत हद तक स्काट जैसे अंग्रेजी लेखकों की रचनाओं के अनुसार, ऐतिहासिक होती थीं। विमला देवी, राणी संयुक्ता, अहल्या बाई, विजय नगर साम्राज्यमु, अस्त-मयमु, विज्जल देवी, प्रमदावनमु आदि इसी प्रकार के हैं। तत्कालीन सामाजिक जीवन को चित्रित करनेवाले उपन्यास बिरले ही हैं। राजशेखर चरित्र, रामचन्द्र-विजयमु जैसे उपन्यास बहुत ही कम हैं। उत्तरकालीन लेखक राजस्थान को छोड़ कर, आन्ध्र प्रदेश में आए। राजा-रानी, वीर और गुप्तचरों को छोड़ कर, किसान-मजदूर, अफसर, जमींदार, गृहिणी, वेश्याएँ, इनके सुख-दुख, समस्याएँ, अन्तःसंघर्ष आदि को कथा-वस्तु बना कर, लिख रहे हैं। तब और अब शृङ्गार ही अत्यन्त आकर्षणीय रस होने पर भी, उस रस के चित्रण में नए-नए मार्गों का अवलम्बन कर रहे हैं। इन नई प्रवृत्तियों को लघु कथाओं में भी देख सकते हैं। गुडिपाटि वेंकट-चलं, बुच्चिबाबु, पालगुम्मि पद्मराजु, कोडवटिगंटि कुटुम्बराव आदि लेखकों को नवीन प्रवृत्तियों के मार्ग-दर्शकों में गिनना चाहिए।

तेलुगु में नाटक-रचना पिछले साठ-सत्तर वर्षों से ही होने पर भी, नाटकों में भी प्रथमतः प्राचीन पद्धतियाँ और उनके बाद नई प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सभी प्राचीन नाटक गद्य-पद्यात्मक हैं। चिलकमर्ती लक्ष्मी नरसिंहम आदि के नाटकों में गद्य से बढ़ कर पद्य का स्थान ही प्रमुख है। उन दिनों में नाटकों के दर्शक गद्य को सुनते ही न थे। प्रतापरुद्रीयमु, कन्या-शुल्कमु (संपूर्ण नाटक में ही हैं।) इनकी गणना अलग होनी चाहिए। ऐसे नाटक अब नहीं हैं। आज-कल समकालीन जीवन से सम्बन्धित नाटक (गद्य में ही) लिखे जा रहे हैं।

एकांकियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। इनमें पाश्चात्य रचनाओं का अत्यधिक प्रभाव लक्षित होता है। इस कारण से, इनका निरादर नहीं होना चाहिए। संस्कृत के महाकवियों का प्रभाव, हमारे प्राचीन कवियों की रचनाओं पर लक्षित होता है न?

समय प्रवाह के समान है। आज की नवीनता, कल की प्राचीनता है। आज का भविष्य, कल का वर्तमान है। कवि के शब्दों में कहें तो अच्छी वस्तुओं के लिए क्या नया?, क्या पुराना?*

मुख्य न्यायाधीश,
मद्रास

—पी. बी. राजमन्नार

हैदराबाद पब्लिक स्कूल,
बेगमपेट (हैदराबाद)

अनु : भीमसेन 'निर्मल'

* आकाशवाणी के सौजन्य से

"ओ अप्रस्तुत मन !" भारतभूषण अग्रवाल की नयी काव्य कृति

प्रस्तुत लेख में मैं हिन्दी की जिस कविता की चर्चा करने जा रहा हूँ, वास्तव में चर्चा का यह विषय न तो बिलकुल नया है, और न ही मौलिक। वस्तुतः पिछले बीस वर्षों से हिन्दी की कविता साहित्य की सभी विधाओं की तुलना में चर्चा का एक सशक्त विषय बनी हुई है। पिछली एक दशाब्दी में तो हिन्दी कविता के क्षेत्र में जो नया सृजन हुआ है, कविता के रूप में जो चर्चाएँ और विवाद उपस्थित हुए हैं, वास्तव में उसका अपना एक अलग इतिहास है। हिन्दी के कुछ समर्थ साहित्यकारों के मतानुसार तो इस अवधि में हिन्दी कविता के क्षेत्र में जो सृजन हुआ है, विश्व-साहित्य में वह सबसे अग्रणी है। इस अवधि में हिन्दी की कविता जैसा कि मैंने कहा एक नय रूप में निरन्तर विकसित होती रही है और आज उसका अपना एक विशिष्ट रूप बन गया है। उसके सम्बन्ध में एक अलग मान्यता तथा एक नई प्रतिष्ठा स्थापित हो गई है। यों ये बात अलग है कि हम कविता के इस नये रूप का प्रयोग वादी कविता के नाम म अभिहित करें, अथवा उसे नई कविता की सज्ञा दें किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कविता का यह नया रूप सर्वाधिक चर्चा का विषय होते हुए भी सबसे अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। हिन्दी के कुछ मूर्धन्य आलोचकों ने भी नई कविता के "कन्टेन्ट" को स्वीकारते हुए अपनी पुरानी मान्यताएँ बदली हैं। यों पिछली एक दशाब्दी वास्तव में हिन्दी कविता के लिए एक बहुत बड़ा आन्दोलन काल कहा जा सकता है। पिछले दिनों हिन्दी में 'संवेत' 'हंस' 'नयी कविता' 'निकष' 'विविधा' तथा 'समवेत' नामक जो संकलन हमारे सामने आये उन्होंने भी स्पष्ट रूप से हिन्दी की इस नयी कविता को मान्यता दी तथा उसके महत्व को स्वीकारा है। इस अवधि में हिन्दी की ये कविता केवल संकलन तथा पत्र-पत्रिकाओं तक ही सीमित होकर नहीं रहीं वरन नयी कविता के कई महत्वपूर्ण संग्रह हमारे सामने आये हैं, जिसने नई कविता के प्रति हमारी आस्था और अधिक दृढ़ हुई है। इन प्रकाशनों में, इन्द्रधनु, रौंदे हुए ये, धूप के थान हमारी राह, ठण्डा लोहा, नाव के पाँव, बन पाँखी ! सुनो, चक्रव्यूह, भटक मेघ, स्थितियाँ : अनुभव, वैयक्तिक, सूर्य का स्वागत, अकेले कंठ की पुकार, कवितायें तथा चाँद से नीचे नामक संग्रह उल्लेखनीय हैं।

अपनी इस पृष्ठभूमि में नई कविता की यशः वृद्धि करने वाले इन संग्रहों की शृंखला में मैं हाल ही हाल प्रकाशित श्री० भारतभूषण अग्रवाल के कविता संग्रह "ओ अप्रस्तुत मन !" की चर्चा प्रारम्भ करता हूँ। "तार सप्तक" के एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में आज से कई वर्ष पूर्व श्री० भारतभूषण अग्रवाल ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था और जैसा कि उन्होंने इस संग्रह की भूमिका में लिखा है, उनका सृजन-क्रम बहुत ही रुक रुक कर तथा काफ़ी कम मात्रा में चलता रहा। इस बीच उनकी कविता के प्रेमी पाठकों के सामने ऐसा कोई संग्रह नहीं था, जो उनकी प्यास को तृप्त कर सके। यों इससे पूर्व भी उनके कुछ कविता-संग्रह प्रकाश में आए, किन्तु उनकी गणना उल्लेखनीय संग्रहों में न की जा सकी। प्रस्तुत संग्रह में उनकी सन् १९४५ से लेकर सन् '५८ तक की छोटी तथा बड़ी, कुल ८४ कविताएँ संकलित की गई है। पुस्तक की सशक्त तथा प्रतिक्रियात्मक भूमिका पढ़ने के लिए मैं इसलिए भी आग्रह करूँगा कि उससे हिन्दी में फैले हुए विभिन्न मतवाद, दलवाद, वितंडावाद तथा पक्ष धरता का रहस्योद्घाटन हो सकेगा। और हमारे आलोचको की संकुचित मनोवृत्ति की झलक मिल सकेगी। साथ ही कविता के प्रति कविका दृष्टिकोण भी समझा जा सकेगा। 'ओ ! अप्रस्तुत मन !' नामकरण वास्तव में कविता संग्रह की सभी रचनाएँ पढ़ जाने के बाद, बिलकुल सही मालूम होता है, क्योंकि इस भारी भरकम संग्रह में ऐसी रचनाएँ बहुत कम हैं, जो पूर्ण-रूपेण हमारे हृदय पर स्थाई अमर छोड़ सकें। और ईमानदारी को स्वीकार करले ने लिए कवि स्वयं धन्य-वाद का पात्र है। जैसा कि कवि ने भूमिका में स्वयं स्वीकार किया है "ऐसी कविताएँ जो मेरे सम्पूर्ण मन

के प्रबल वेग से काग़ज़ पर उतरी हैं, अपेक्षा-कृत कम हैं।" इस संग्रह की रचनाओं के सम्बन्ध में कवि की एक और स्वीकारोक्ति महत्वपूर्ण है : "अनेक बार मेरी रचना रुक जाती है, अधूरी रह जाती है, या फिर अधूरे मन से पूरी होती है।" इस निकष पर, मैं समझता हूँ कि वे अनेक रचनाएँ, जो अपना कोई असर नहीं छोड़ पातीं, खरी उतरती हैं। उन रचनाओं को मैं अधूरे मन से पूरी होने वाली अथवा अधूरी रह जाने वाली रचनाएँ मानता हूँ। फिर भी इन कृतियों में मध्य-वर्गीय मन का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत किया गया है। आज के मध्यम वर्गीय व्यक्ति की समस्याएँ जीवन संघर्ष, उसकी घुटना तथा छटपटाहट, संक्रम की कुन्ठाएँ तथा जीवन को सुन्दरता रूप में देखने की स्वप्न दर्शिता—इन सभी बातों का सही-सही चित्रण इस संग्रह की अधिकांश रचनाएँ प्रस्तुत करती हैं।

कविता-संग्रह का पूर्वार्द्ध पढ़कर मुझे बड़ी ही निराशा तथा साथ ही आश्चर्य भी हुआ। इस बीच की कविताओं के साथ भी अधूरे मन से पूरी होनेवाली ट्रेजेडी का अटूट सम्बन्ध मालूम होता है। "दबा हुआ शहर," नामक रचना एक लम्बी तथा प्रतीकात्मक कृति है। इसमें नई पीढ़ी के कल्याणार्थ पुराने पीढ़ी के त्याग करने का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। "मैं निरा विलायती स्पंज हूँ" नामक रचना भी पूर्वार्द्ध की अच्छी रचनाओं में से एक है। "नाग, बीन और मदारी" पूर्वार्द्ध की एक महत्वपूर्ण रचना है। भारत जी की एक बड़ी विशेषता यह है कि उनकी प्रतिक्रियात्मक अनुभूतियाँ भी अकालात्मक ढंग से नहीं प्रस्तुत हो पातीं। अपनी घुटन तथा अतृप्ति को वे कलात्मक-पुट देकर इस परोक्ष ढंग से कहते हैं, कि वे पाठक पर बिना अपना असर छोड़े नहीं रहतीं। यूँ मैं प्रतिक्रियात्मक रचनाओं को मूल्यांकन की दृष्टि से विशेष अच्छा स्थान नहीं दे पाता, और न ही इस कोटि की रचनाओं का अपना कोई विशेष व्यक्तित्व होता है। किन्तु भारत जी की इस कोटि की रचनाएँ कुछ इस प्रकार का कलात्मक बाना पहन कर प्रस्तुत होती हैं, कि हम उनकी मान्यता को स्वीकार कर नहीं कर सकते; और न ही वे हमें केवल व्यक्तिगत अनुभूतियाँ मालूम होती हैं। उनकी प्रतिक्रियात्मक रचनाओं में भी हमें व्यक्तिगत अनुभूतियों के दर्शन होते हैं। 'नाग, बीन और मदारी', नामक जिस कविता का मैं उल्लेख कर रहा हूँ, उसमें कवि की, या यों कहिए कि एक परतन्त्र व्यक्ति की छटपटाहट तथा स्वतंत्रता होने की व्याकुलता द्रष्टव्य है। मदारी की बीन पर नाचने वाले साँप को प्रतीक रूप में प्रस्तुत कर हर उस व्यक्ति की बात कवि ने कह दी है, जो नौकरशाही के शिकार के रूप में परतन्त्रता की छटपटाहट भोगते हुए भी मदारी के इशारों पर नाचता है। कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ :

"अभी पलभर में मदारी खोलकर झोली
निकालेगा तुम्हें
भीड़ के आगे तमाशा-सा बनाकर
नचा डालेगा तुम्हें,
वही होगा सही अवसर भाग जाने का
जंगलों की मुक्त मीठी साँस पाने का,
साथियों में पहुँच कर संदेश यह देना
बीन के स्वर में पराई फूँक है
जिस मदारी ने तुम्हारे दाँत तोड़े हैं
उसी के दृढ़ मख़्मल हाथों में बँधी
मैं बोलती हूँ बस उसी की बात"

नाग से बीन का यह कथन परतन्त्रता में जकड़े हुए व्यक्तियों पर करारी चोट है, जो कि परोक्ष रूप से नाग, बीन और मदारी के प्रतीक द्वारा बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई है। कविता की कुछ और पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

"शक्ति जिसकी व्यर्थ : वह नाग
राग जिसका व्यर्थ है : वह बीन
दोनों उपकरण हैं, व्यर्थता के उस तमाशे के
जो मदारी के लिए आजीविका है,
लाभ है"

यों इसी पूर्वार्द्ध में कुछ कविताएँ तो अत्यन्त ही कमज़ोर तथा सस्ती तुकबन्दी से पूर्ण हैं, जिन्हें जाने क्यों कवि ने इस संग्रह में रखने का लोभ संवरण नहीं किया। यों भी उत्तरार्द्ध की कविताओं की तुलना में पूर्वार्द्ध की रचनाएँ काफ़ी कमज़ोर तथा असम्बद्ध-सी मालूम देती हैं। ये कविताएँ संग्रह को भारी भरकम बनाने के उद्देश्य से ही शायद संगृहीत कर ली गई हैं। फिर भी ये रचनाएँ कवि के विकास क्रम पर प्रकाश

डालती हैं। किन्तु यदि उत्तरार्द्ध की सशक्त और चुनी हुई रचनाएँ ही संग्रह में रखी गई होती, तो मेरी राय में यह संकलन कहीं और अधिक प्रभावशाली बन पड़ता। पूर्वार्द्ध की रचनाओं में एक और अच्छी रचना है : मरण-संगियों का गीत, जो एक आस्थावान तथा संघर्षशील व्यक्ति के आत्मविश्वास की पुष्टि करता है।

मेरी राय में इस संग्रह में जो व्यंग कृतियाँ रखी गई हैं, यदि उन्हें अलग से किसी संग्रह में रखा गया होता तो, उनका व्यक्तित्व कहीं कहीं विशेष उल्लेखनीय बन पड़ा होता। कुछ व्यंग कविताएँ न तो अच्छे व्यंग को प्रस्तुत करती हैं, और न ही उनमें कोई विशेष कन्टेन्ट ही हमें दीख पड़ता है। 'चलते रहो' नामक व्यंग कविता में कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

"स्वप्न मत गढ़ो
काव्य मत दढ़ो ?
मतलब मानो मेरे भाई
यह है जमीन, यह है मशीन
इनका वसूल पहचानो मेरे भाई "

वास्तव में व्यंग्य के द्वारा प्रस्तुत की गई ये सूक्तियों में काव-गुण के उपयुक्त नहीं मानता, नहीं तो कवि को सूक्तिकार के रूप में स्वीकारना मुझे जँचता है। व्यंग्य-कविता कविताओं में इसी प्रकार की कुछ और भी कविताएँ संग्रह में हैं। "प्रतीति" नामक कविता पूरी उद्धृत है :

"अभी तक काव्य ही रचता रहा हूँ
जगत के कर्म से बचता रहा हूँ
बड़ा ही मूर्ख हूँ, पछता रहा हूँ"

किन्तु इस की एक विशेष व्यंग्य-रचना का उल्लेख करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। टूटे 'सपनों का सपना" नामक ये रचना वास्तव में आज के युग में कला के वाणिज्यीकरण या कमर्शियलाईजेशन पर एक करारी चोटी है। कन्टेन्ट तथा ब्रेविटी की दृष्टि से भी यह रचना अपना एक अलग व्यक्तित्व रखती है। युग की वर्तमान कलात्मक छटपटाहट भी इस रचना में स्पष्ट रूप व्यक्त हुई है। एक कविता है :

"रात मैंने एक सपना देखा
मैंने देखा :
कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है,
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे है
गणेश टाकी खा रहे हैं

× × ×

और बृहस्पति अंग्रेजी से अनुवाद कर रहे हैं"

कविता बेजोड़ है। इस सम्बन्ध में अधिक प्रशंसा करने से पक्षधरता का भ्रम हो जाने का भय है।

जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ संग्रह में उत्तरार्ध की रचनाएँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं में "दर्द का टीका," 'सूखे की पुकार,' 'हम नहीं हैं द्वीप,' "कार्टूनों का जुलूस", 'परिणति' 'टूटे सपनों का सपना,' 'छोटी कविता,' 'प्रतीति' 'उपवन से बातचीत,' 'आनेवालों से एक सवाल,' 'दर्द के फूल,' 'तुम आो,' 'मेरे पूर्वजों,' ' अन्धकार की हदें खींच दो,' 'असाधारण की चाह' 'इतिहास का कलंक' 'रसमें डूबे ये पल,' 'दर्द के तिनके,' 'कौंध तो अभिव्यक्ति है,' 'एक सूक्ति' तथा 'समाधि-लेख,' महत्पूर्ण हैं। उत्तरार्ध में दो चार ही ऐसी रचनाएँ हैं, जो साधारण कविता की कोटि में आती हैं। अन्यथा सभी कविताएँ विशेष महत्वपूर्ण तथा उल्लेख के योग्य हैं। इन उल्लेख्य रचनाओं की सूची में भी कुछ विशेष महत्व की कविताएँ हैं यों इस छोटे से लेख में इन सभी अच्छी रचनाओं की चर्चा, व्याख्या विस्तार के साथ कर पाना सम्भव भी नहीं है। फिर भी 'दर्द का टीका' 'असाधारण की चाह,' 'सूखे की पुकार,' 'हम नहीं हैं द्वीप,' 'तुम आो मेरे पूर्वजों' तथा 'समाधि-लेख 'नामक रचनाओं के सम्बन्ध में प्रशंसा की अभिव्यक्ति में कोई भी ईमानदार पाठक अथवा आलोचक अकिंचनता बरतने की बेईमानदारी नहीं करेगा, चाहे वह किसी पूर्वग्रहयुक्त भावना से प्रभावित ही क्यों न हो ? 'हम नहीं हैं द्वीप,' नामक रचना वास्तव में "अज्ञेय" की कविता 'हम नदी के द्वीप हैं,' की प्रतिक्रियात्मक सर्जना के रूप में स्पष्ट है, किन्तु इस प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति में कलापक्ष कहीं भी अशक्त नहीं होने पाया। कुछ पंक्ति उदहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

"हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के
वरन् जीवन से भरे निर्मल सरोवर हैं
भले मिट्टी से हुआ निर्माण
किन्तु मिट्टी है परिधि ही

नहीं है मिट्टी हमारे प्राण,
अथवा, हम में जी रहा है
सिन्धु की गहराइयों का, मेघ की ऊँचाइयों का प्यार
या-पर कृपाकर यह न सोचो,
धार की हर लहर जो आती तुम्हारे पास
ठोंकती है, वह तुम्हारी पीठ,
या तुम्हारी कीर्ति में वह छेड़ती है तान,
वह तो है विकल, बे-चैन तुमको लाँघ जाने के लिए
सहज गति अनुरुद्ध पाने के लिये
धारा बढ़ाने के लिए"

यों इस कविता का प्रत्येक शब्द अपने आप में महत्व पूर्ण है। अपने सृजन के प्रति कवि की जागरूकता एक और ध्यान आकृष्ट करने वाला तथ्य है। अपने सृजन के साथ ही कवि अपने पूर्वजों तथा तथा आने वाली पीढ़ी के सृजन और उनकी मान्यताएँ क्या होंगी? अथवा क्या रही हैं, के प्रश्नार्थक चिन्तन से किंचित् भी दूर नहीं हुआ है। कवि अपने पूर्वजों के प्रति पूर्ण सन्तुष्ट न रहते हुए भी आने वाली पीढ़ी से सवाल करना नहीं भूल पाता। "तुम ओ मेरे पूर्वजों" नाम कविता में अपने पूर्वज साहित्यकारों के प्रति कवि की ईमानदारी स्तुत्य है :

"दीप्त थीं शिखायें जो
धूमहीन निष्कलंक तेज की सवारिया
ताम्रारुण लपटें जो पहुँचती थीं व्योम तक
तारों के माथे भी पसीजते थे जिनकी चमक में
तप्तालोक जिनका
हमारे इस अन्धे युगपथ की आशा था —
कहाँ हैं वे?
जवाब दो!
तुम ओ ज्योतिवाहियों!
तुम : जिन्हें सौंपी थी इतिहास ने
वह अग्निमयी शक्ति की मंगल-निधि
तुम ओ, मेरे पूर्वजों!"

किन्तु बिके हुए पूर्वजों के पास इसका उत्तर ही कहाँ है? कवि का आत्म-विश्वास आगे की पंक्तियों में और स्पष्ट रूप में झलक आया है। बिकने की कलंक-गाथा के पहले कवि ने पूर्वजों से ग्रहण किया, उसे उसने ईमानदारी से काव्य का बाना पहना दिया है :

"इस कलंक गाथा के कुछ पहले
मैंने प्राप्त की थी एक लघु चिनगारी,
तुममें ओ, मेरे पूर्वजों!
यज्ञ की अरणि सी।
पैतृक अधिकार सी"

कविता के अन्त कि ये पंक्तियाँ भी दृष्टव्य है :-

"प्राणों की कच्ची कंदील में
प्रतिपल फूक फूँक कर
इसको सुलगाया है
ताकि यह वंशधर तुम्हारी ही अग्नि का
उस दिन बने तुम्हारे पथ की मशकत ज्योति
जिस दिन तुम्हारे बूढ़े हाथों से छिन जाय
मशाल यह किराये की!
बोलो क्या ऐसा दिन कभी भी न आयेगा?"

भारत जी की सम्पूर्ण कविताओं में जीवन तथा साहित्य के प्रति उनकी महान् प्यास के दर्शन होते है, जिसे मै विकास के लिए एक बहुत बड़ा शुभ लक्षण मानता हूँ। साधारणता से जाने क्यों उन्हें एक ऊब सी महसूस होती है, तथा वे प्रतिपल असाधारणता की चाह में एक स्वप्न दर्शी कलाकार की भाँति राह निहारते मे लगते हैं। असाधारण की चाह, नामक रचना उनके जीवन की इस महान् प्यास का सही चित्रांकन करती है। असाधारण चाहे उन्हे मृत्यु में भी मिले, तो उसे स्वीकारने में उन्हें किंचित् भी हिचक नही होगी। इस कविता की अन्तिम पंक्तिया इस बात का सही रूप सामने लाती है :-

"यदि सदा साधारण रहना ही मेरी नियति है,
तो फिर
कम से कम हो इतना मेरा भाग्य
मेरे इस जीवन का अन्त असामान्य हो!"

उनकी इसी जीवन-पिपासा का चित्रण करने वाली एक और अत्यन्त छोटी तथा महत्वपूर्ण रचना है। इसे मैं कई दृष्टियों से संग्रह की सर्व-श्रेष्ठ रचना मानता हूँ। जिस संक्षिप्तता से कवि ने एक बहुत बड़े तथ्य को चार पंक्तियों में बांध दिया है, वह बरबस ही अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर लेता है। 'समाधि-लेख' नामक

रचना की ये पंक्तियां बार बार पढ़ने पर भी उसमें कुछ और नया ही हमें प्राप्त होता है :-

"रस तो अनन्त था, अंजुरी भर ही पिया
जी में बसन्त था, एक फूल ही दिया
मिटने के दिन आज मुझको यह सोच है
कैसे बड़े युग में कैसा छोटा जीवन जिया"

हम भारत जी को विश्वास दिलाना चाहते है, कि वे मिटने वाले इस संभ्रम से दूर रहें। उन्हे अमरता देने के लिए उनकी मुट्ठीभर रचनाएँ ही पर्याप्त हैं। आखिर साहित्य में पक्षधरता की जय कब तक होगी? सृजन की सुगंध तो सात समुन्दर के पार भी लोगों के मन, प्राणों को महका देती है। मूल्यांकन गलत हाथों से अधिक समय तक नहीं प्रसारित होता रहेगा। अपनी एक कविता में भारत जी ने आगे आने वाली जिस नई पीढ़ी से अपनी रचनाओं के संम्बन्ध में प्रश्न किये हैं, मै उन्हें विश्वास दिला देना चाहता हूं कि वह नई पीढ़ी पीछे की पीढ़ी से कही अधिक मात्रा में सजग, अध्ययन-शील तथा ईमानदार है। वह पीढ़ी सही मूल्यांकन के लिए संघर्ष भी कर रही है। और मुझे विश्वास है कि वह हिन्दी के भाल पर गलत मूल्यांकन का कलंक-टीका कभी भी नहीं लगने देगी।*

आकाशवाणी,
भोपाल

— नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी

आलोचक

एक तो इस प्रकार के आलोचक होते है जो किसी भी रचना को पसन्द नहीं करते चाहे वह अच्छी से अच्छी क्यो न हो;

दूसरे इस प्रकार के आलोचक होते है जो कि समस्त रचनाओ पर वाह वाह करते है चाहे वे किसी प्रकार की हों;

तीसरे इस प्रकार के आलोचक होते है जो कि ईर्ष्यावश श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ रचना में से एक मात्र दोष-दर्शन ही करते हैं और उसके गुणों के प्रति वे जान-बूझ कर अपनी आँखों को बन्द कर लेते है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के आलोचक आलोचक कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

आलोचक कहलाने के वे अधिकारी हैं जो सहृदय, सच्चे, विवेक शील, ईर्ष्या और पक्षपात से रहित और गुणों को जाननेवाले होते हैं।

कुछ आलोचक वाणी द्वारा, कुछ हृदय द्वारा और कुछ मानसिक और शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा अपने विचारो और भावों को व्यक्त करते है।

'काव्य- मीमांसा'—से

—राजशेखर

---

* ओ अप्रस्तुत मन! लेखक : श्री भारत भूषण अग्रवाल,
प्रकाशक और वितरक : राजकमल प्रकाशन फैज बाजार,
दिल्ली
मूल्य : ४—००

आधुनिक बँगला उपन्यासों का एक संक्षिप्त परिचय

आधुनिक शब्द सापेक्ष है इसलिए एक काल विशेष की परिधि में इसे सीमित करना मुश्किल हो जाता है। प्रस्तुत लेख में मैं शरदोत्तर उपन्यासकारों की कृतियों को ही आधुनिक माने लेता हूँ। सन-तारीख के हिसाब से लगभग सन १९३० ई० के बाद की रचनाओं की चर्चा करने का प्रयास करूँगा।

उपन्यास इस युग का महाकाव्य है। समाज के ढाँचे और मानव-मानस में दिन प्रति दिन जो महान परिवर्तन होते जा रहे हैं, उसको कलात्मक रूप से आँकने का प्रयास सार्थक उपन्यासों में हो रहा है।

बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ तथा शरत्चन्द्र के समकालीन सभी उपन्यासकारों तथा उनकी कृतियों की नामावली इस संक्षिप्त लेख में देना सम्भव न होगा।

सन् १९२३ ई० के लगभग 'कल्लोल' नाम की एक मासिक-पत्रिका प्रकाशित होने लगी, जिसके चारों ओर नवीन कथाकारों का एक नया दल जन्म ले रहा था। यह दल अपने को रवीन्द्र और शरत के प्रभाव से सर्वांग रूपसे मुक्त होने की घोषणा करता था। रवीन्द्र और शरत्चन्द्र के प्रभाव से ये लोग कहाँ तक मुक्त हो पाये, यह अलग विचार्य विषय है, पर इन में से अधिकतर कथाकार और कवि विदेशी कथाकारों और कवियों से प्रभावित अवश्य थे। नुट हैमसन और गोर्की की छायाएँ इनकी रचनाओं में स्पष्ट झलकती थीं। आगे चलकर ये लेखक बँगला साहित्य के एक-एक दिक्पाल बन गए। जो एक मात्र कहानी-लेखक भर थे सो उपन्यासकार बन गये। इस समय अर्थात् 'कल्लोल युग' के कथाकारों में, जो लोग आज ख्याति पा चुके हैं, उन में सर्वश्री प्रेमेन्द्र मित्र, ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, बुद्धदेव बसु मानिक वन्द्योपाध्याय तथा अचिंत्य सेनगुप्त उल्लेख योग्य हैं।

उस युग में विदेशी प्रभाव से मुक्त सर्वथा मौलिक उपन्यास लिखने वालों में दो नाम सबसे प्रथम पंक्ति में आते हैं—मानिक वन्द्योपाध्याय और विभूति भूषण वन्द्योपाध्याय। हिन्दी कथासाहित्य में जिस तरह प्रेमचन्द ने ग्राम्य जीवन के चित्र आँकने में कुशलता दिखाई, बंगला में भी इन दोनों कथाकारों ने ग्राम्य जीवन को ही अपनी सफल रचनाओं की काव्यवस्तु बनाया। विभूति भूषण ने 'पथेर पाँचाली' दिया तो मानिक ने 'पद्मा-नदीर माँझी' और 'पुतुल नाचेर इतिहास'। ये तीनों उपन्यास आज भी बँगला साहित्य में बेजोड़ हैं।

"पथेर पाँचाली" में एक निम्न मध्यवर्गीय ग्रामीण गृहस्थ का घरेलू चित्र है जिसमें शिशुमन के नित नये कुतूहलपूर्ण मनस्तत्व का उद्घाटन किया गया है। प्रकृति से गंभीर प्रेम तथा तादात्म्य से यह है उपन्यास ओतप्रोत।

दूसरे हैं मानिक जिनका उद्देश्य पद्मा नदी के विशाल वक्ष पर तथा उसके तट पर की गन्दी बस्तियों में रहनेवाले मछुओं के जीवन का वास्तविक वर्णन करना मात्र न था। शोषण है तो उसके पीछे कोई कारण भी है, मनुष्य के जीवन को यौन-कामना उसकी नवेल पकड़कर किस तरह घुमाती है—किस तरह उस जीवन पर वह अपने प्रभाव का विस्तार करती है, इसका सूक्ष्म लेखा जोखा है। 'पुतुल नाचेर इतिकथा' में भी यौन आकर्षण का प्रभाव ही मूल सूत्र है—पर कथावस्तु में शहरी जीवन तथा ग्राम-जीवन का एक तुलनात्मक द्वंद्वमूलक विवेचन भी है और एक आदर्शवादी डाक्टर के स्तुत्य प्रयासों का गाँव के अन्धसंस्कारों की चट्टान पर सिर टकराने का मर्मस्पर्शी वास्तविक चित्र है।

विभूति भूषण का 'पथेर 'पाँचाली' नामक उपन्यास सन् १९२९ ई० में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था। इस रचना में देहाती जीवन का चित्र शरत्चन्द्र के देहाती-जीवन से पृथक था। यों ग्राम्य समाज का परिवेश लेकर उपन्यास लिखनेवालों में शरदोत्तर युग में तीन ही नाम सामने आते हैं—विभूति भूषण, मानिक तथा ताराशंकर। पर शरत्, विभूति, मानिक तथा ताराशंकर के ग्राम्य-जीवन के चित्र आँकने में दृष्टिकोण विभिन्न थे। शरत् के देहाती चित्रों में जात पाँत, छुआछूत, जमींदार तथा उच्चवर्ग की झूठ शौकत और गरीबों के सोने से दिल की झाँकी थी।

विभूति भूषण के उपन्यासों में प्रकृतिप्रेम तथा शिशु मनोजगत् का चित्रण ही प्रधान था, जीवन के संघर्ष के बारे में वे उदासीन थे। नर-नारी का आकर्षण उनके उपन्यासों में वास्तविक नहीं बन पाया। उनके पुरुष शिशु तुल्य है तो नारी मातृसमान। धरती के लोग होने पर भी उनके चरित्र धरती से परे के हैं—धरती के द्वंद्व-संघर्ष से दूर। स्वस्थ दृष्टिकोण सम्पन्न उच्च श्रेणी के कथाकार होने पर भी विभूति भूषण युग की उलझनों से या तो भीत थे या उदासीन।

पर मानिक और ताराशंकर के उपन्यासों के दृश्य पट और भी विस्तृत थे, उनमें आँचलिक ज्ञान और भी गम्भीर था। ताराशंकर के उपन्यासों में राष्ट्र-चेतना ओतप्रोत थी तो मानिक में संकेत पूर्ण मनस्तत्व विश्लेषण तथा तीव्र मानसिक प्रतिक्रिया।

मानिक का प्रथम उपन्यास 'जननी' १९३५ ई० में प्रकाशित हुआ था और उसी साल 'दिवारात्रिर काव्य' नामक दूसरा उपन्यास भी। उनके पूर्वोक्त दो बेजोड़ उपन्यास भी १९३६ ई. में प्रकाशित हुए थे। ताराशंकर कहानी लेखक के रूप में पहले विख्यात हुए और १९३९ ई० के लगभग उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली।

मानिक बन्द्योपाध्याय जन जीवन के प्रथम और प्रधान मौलिक कथाकार के रूप में बँगला साहित्य में आए। रोजी कमाना और यौन-कामना ही मनुष्य के समग्र जीवन को प्रभावित किए रहती है—यही उनके उपन्यास का मूलसूत्र था। यौन-विकार, लिबिडो, लोभ, ईर्ष्या इत्यादि मनुष्य में रहते हुए भी सभ्यता के सर्जन में उसकी भूमिका को मानिक अधिक प्रबल समझते थे। फ्रायड-एडलर से मार्क्स-एंगेल्स को वह ज़्यादा सत्य मानते थे। अट्ठाइस वर्ष के साहित्य-जीवन में वह बँगला साहित्य को ४० उपन्यास, १ नाटक और १८ कहानी-संकलन (कहानियाँ) दे गए हैं। अपने जीवन के अन्तिम १४।१५ वर्षों में वे पहले मार्क्सवादी बने और बाद में साम्यवादी बन गए थे। बंगाल में प्रगतिशील लेखक आन्दोलन के वे कर्णधार थे। दिसम्बर १९५६ में उनकी मृत्यु हुई।

ताराशंकर इस पीढ़ी के सफल उपन्यासकारों में हैं जिन्हों ने काफ़ी जनप्रियता हासिल की है। परम्परा पर आस्था और शरत्चन्द्र की तरह स्वाभाविक संवेदनशीलता ही उनकी जनप्रियता के प्रधान कारण हैं। मानिक की तरह उनका मानव-ममत्व संशय से मलिन नहीं हुआ। 'कालिन्दी' और 'हासुली बाँकेर उपकथा' में उन्होंने समाज रूपान्तर का चित्रण किया है। 'गणदेवता' और 'पंचग्राम' किसानों के जीवन पर लिखे उपन्यास है। इनमें पतनोन्मुख सामन्तवाद का नाटकीय चित्र है। 'नागिनी कन्या काहिनी' में उन्होंने रूप-कथा का स्वर ले लिया है। 'आरोग्य-निकेतन' आदि उपन्यासों में विज्ञान के प्रति उनका अविश्वास बहुत ही खतरनाक रुझान है। दूसरा खतरनाक रुझान यह है कि वे अपने उपन्यासों में तटस्थ यथार्थ-द्रष्टा न बन कर, सत्यदर्शी बनने का प्रयास करते हैं। ताराशंकर साहित्य क्षेत्र में क्षमा और अहिंसा का उपदेशक बनना चाहते हैं।

इस 'कल्लोल युग' के लेखकों में शैलजानन्द मुखोपाध्याय, प्रेमेन्द्र मित्र, गोकुलचन्द्र नाग इत्यादि ने भी उपन्यास लिखे, पर इनमें से कोई भी लेखक उपन्यासकार के रूप में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सका हलाँकि कहानी लेखक के रूप में वे अतुलनीय हैं। प्रेमेन्द्र मित्र ने इस समय के काव्यसाहित्य के दृष्टिकोण के बारे में लिखा था, "मनुष्य देवता भी नहीं है और न पशु—उस समय के मनुष्यों की असहाय व्याकुल जिज्ञासा की वेदना उनके युग-सचेतन मन पर अमिट छाप छोड़ गई थी।"

तभी कोयले के खानों के मजदूरों और संथालों के जीवन के चित्र हमें शैलजानन्द की रचनाओं में प्राप्त होते हैं और मध्यवर्ग के राही जीवन का संघर्षमय चित्र प्रेमेन्द्र की रचना में। ताराशंकर ने भी स्वयं इस समय की रचनाओं के बारे में लिखा था, "इस साहित्य ने ही अज्ञात और अवहेलित मानव समाज की ओर दृष्टि डाली है।"

पर ताराशंकर ने जिन रचनाओं की ओर संकेत किया था उनमें सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि ग़रीब-दुखियों के लिए अफ़सोस जाहिर करने वाले कथाकारों का उद्देश्य अच्छा रहने पर भी मूलतः वे रोमन्टिक थे।

'कल्लोल' मासिक-पत्रिका के ज्येष्ठ, १३३३ बंगाब्द (१९२६ ई०) अंक में ११६ पृष्ठ पर लिखा था, "आज कल सभी कहानियाँ एक ही किस्म की आती हैं। कारखाने और खानों के मजदूरों की घटनाओं को लेकर कहानी लिखना एक तरह से संक्रामक बन गया है।"

इस संक्रमण के पिछे चन्द कारण थे।

कृषि प्रधान बंगाल के उन्नत साहित्य में बंकिम से लेकर शरत् तक शायद ही कहीं किसान का चरित्र हो। प्रेमचन्द का 'होरी' सा चरित्र शायद ही कहीं उस समय के बंगला उपन्यासों में मिले। बंगला कथा साहित्य अभिजातवर्ग तथा मध्यमवर्ग की कुंठित प्रेम-कथाएँ लिखने में ही व्यस्त था। पर युग पलट रहा था। महात्मा गान्धी के प्रभाव से आम जनता राजनीति की ओर दिलचस्पी लेने लगी थी, सो साहित्य में भी वह मनोभावना प्रतिबिम्बित हुई। "रूसी विप्लव, रूसी साहित्य तथा गोर्की का प्रभाव, विवेकानन्द की 'दरिद्र नारायण' के लिए पुकार, ट्रेड यूनियन, कांग्रेस में देश बन्धु चित्तरंजन दास की घोषणा, '९५ फ़ी सदी के लिए स्वराज्य' उस समय की हवा में ओतप्रोत थे।" इसी युगधर्म की प्रेरणा से मानिक ने 'पद्मा नदी का माँझी' लिखा और शैलजानन्द ने 'नारी मेध'।

अचिंत्य कुमार सेनगुप्त का 'वेद' (बंजारा) विभूति-भूषण का 'अपराजित' या प्रबोध कुमार सान्याल का 'महाप्रस्थानेर पथे' पढ़ने से लगता है कि उन्होंने शरत् के 'श्रीकान्त' में वर्णित यायावर-प्रवृत्ति से प्रेरित होकर इन उपन्यासों को लिखा-जिन में उपन्यास का प्रधान गुण-जीवन का सामग्रिक चित्र न था—टूटे फूटे बिखरे जुड़े छोटे-छोटे खंड-चित्रों का संकलन। और दूसरी दुर्बलता थी उपन्यास में काव्योच्छ्वास।

बुद्धदेव वसु का प्रथम उपन्यास 'साढ़ा' १९३० ई० में प्रकाशित हुआ था। उस समय से आज तक उन्होंने अनेक उपन्यास लिखे पर उनमें गीति-काव्य का स्तर विद्यमान है। उनकी पत्नी श्रीमती प्रतिमा वसु के 'तीन-तरंग', 'मनेर मयूर' आदि उपन्यास काफ़ी जनप्रिय हुए पर वह अपने पति की शैली से सर्वथा प्रभावित हैं।

इस समय के प्रवीण उन्यासकारों में अन्नदा शंकर राय ने 'एपिक-नोवेल' या पाँच खंडों में 'सत्यासत्य' नामक एक बृहद् उपन्यास लिखा था किन्तु उपन्यासकार के रूप में उसी एक उपन्यास में ही उनकी शक्ति विलीन हो गई। सरोज कुमार राय चौधुरी के उपन्यास 'गृहक-पोती' और 'मयूराक्षी' ने काफ़ी हवा बाँधी थी पर उनकी बाद की रचनाएँ 'कृशानु' या 'शताब्दीर अभिशाप' इतनी खरी न उतरीं।

इस समय के उपन्यासकारों में 'वनफूल' का नाम शिल्प-विधान और शैली के नित-नये प्रयोगों से अलंकृत, वैज्ञानिक कुतूहल से पूर्ण रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध है। मनोविकलन का चौंका देने वाला सिद्धान्त, चमत्कार पूर्ण घटनाओं की उद्भावना तथा चरित्र-निर्माण की कुशलता के कारण 'वनफूल' के 'रात्रि', 'मृगया,' 'से ओ आमि' 'जंगम' आदि उपन्यास में विख्यात हुए, पर मानव प्रेम तथा संवेदनाशीलता के अभाव में 'वनफूल' की टेकनिक-प्रधान रचनाएँ उच्च श्रेणी की रचनाएँ न बन सकीं। केवल वैज्ञानिक तथ्यों से ही मानव-मन सन्तुष्ट नहीं होता वह तो मानव के कोमल कठोर अनुभूतियों की भी झंकार चाहता है। 'वनफूल' में वैज्ञानिक ज्ञान की कमी नहीं, पर वैज्ञानिक चेतना की निहायत कमी है।

इसी पीढ़ी के उपन्यासकारों में धूर्जटि प्रसाद-मुखोपाध्याय, गोपाल हालदार, शरदिन्दु वन्द्योपाध्याय, और संजय भट्टाचार्य भी आते हैं। धूर्जटि प्रसाद की 'ट्रिलजी' अर्थात् तीन-खण्ड का उपन्यास—अन्तः-शीला, फल्गु, मोहाना और गोपाल हालदार की ट्रिलजी एक दिन, अन्य दिन, आर एक दिन— दोनों दो धरातल के उपन्यास है। दोनों उपन्यासकार प्रधानतः विदग्ध पंडित और आलोचक हैं।

कुछ नए उपन्यासकार जो हाल में दूर देश. भौगोलिक पृष्ठभूमि लेकर उपन्यास रचना में सफल हो चुके हैं वे हैं हरिनारायण चट्टोपाध्याय, सुधीरंजन-मुखोपाध्याय, शचीन्द्र वन्द्योपाध्याय आदि हरिनारा-यण के 'इरावती' 'उपकूल' 'अगाकाम' आदि उपन्यासों की पृष्ठभूमि बर्मा में है तो सुधीरंजन की इंग्लैण्ड में।

मनोज वसु तथा विमल मित्र भी बहुत दिनों से उपन्यास रचना कर रहे हैं। सुमिष्ट, ललित भाषा में मानव-मन की स्निग्ध और सुन्दर झाँकी दिखाने में वे दक्ष हैं। पर उपन्यासकार के रूप में उन्हें सफल नहीं माना जा सकता।

आंचलिक उपन्यास की रचनाओं में सफलता पाने वाले कथाकारों में अमरेन्द्र घोष, रमेशचन्द्र सेन, समरेश वसु प्रख्यात हैं। इन उपन्यासों में आँचलिक विशेषताएँ, वहाँ की बोली, रहन सहन, रीति-रिवाज इत्यादि से पाठकों का परिचय होता है। हिन्दी में रेणु तथा नागार्जुन के लिखे आंचलिक उपन्यास बँगला में

प्रकाशित 'चर-काशेम' 'शताब्दि' 'कुरपाला' 'मालंगीर-कथा' 'गंगा' आदि उपन्यासों का आभास दे सकते हैं।

नारायण गंगोपाध्याय इस आधुनिक पीढ़ी के सब से सफल उपन्यासकार हैं। उनका 'उपनिवेश' 'शिलालिपि', 'पद-संचार' आदि सार्थक उपन्यास हैं। बंगाल के दक्षिण अंचल में किसी समय पुर्तगाली जल-दस्युओं का बड़ा उपद्रव था। 'पदसंचार' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिस में पुर्तगालियों के अत्याचार से त्रस्त तथा संग्रामशील समाज का चित्र है। ऐतिहासिक विषय वस्तु लेकर उपन्यास रचना में विमल मित्र, प्राणतोष घटक, सतीनाथ भादुड़ी तथा सुबोध घोष आधुनिक पीढ़ी के सफल कलाकार हैं पर इन लोगों की इतिहास-वीक्षा प्रगति-बोध की परिचायक नहीं।

गौरीशंकर भट्टाचार्य ने दो उपन्यास लिखे हैं 'ऐलबर्ट हल' तथा 'इस्पातेर साक्षार'। 'ऐलबर्ट हल' उपन्यास काफ़ी-हाउस को केन्द्र बनाकर लिखा गया है और 'इस्पातेर साक्षार' लोहे के कारखाने को केन्द्र बनाकर एक सुवृहत् उपन्यास। इन में उपन्यासकार का अनुसन्धान गुण है।

विभूतिभूषण मुखोपाध्याय का 'नीलांगुरीय' आज के जमाने में कुछ जमता नहीं। किसी रईस की बेटी के साथ गृहशिक्षक का प्रेम अब काफ़ी पुरानी विषयवस्तु बन गया है।

नवेन्दु घोष भी एक सफल उपन्यासकार हैं। हिंदु-मुसलमान दंगे के समय लिखा उनका 'फ़ियर्स लेन' उपन्यास काफ़ी प्रभाव विस्तार कर सका था। उस जमाने में ही यह उपन्यास उर्दू में अनूदित हो चुका था। सुशील जाना का 'सूर्यग्राम' 'बेलाभूमिर गान' इत्यादि भी प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

नवीन लेखकों में समरेश वसु अग्रगण्यों में है। 'बी. टी. रोडेर धारे' 'उत्तरंग,' भानुमती' 'गंगा' इत्यादि में उनकी तीक्ष्ण दृष्टि का परिचय मिलता है। वर्णनशैली में वे कलम के धनी हैं। उनके पास कहानी कहने की बेजोड़ कला है। अपने उपन्यासों में उन्होंने नई पृष्ठ भूमि पर, नए चरित्रों का आह्वान किया है और उनमें अधिक नवीनतर, अधिक सशक्त एवं मौलिक वस्तु-तत्व दिया है।

नरेन्द्र नाथ मित्र में 'द्वीपपुंज' 'चेनामहल' 'दूर-भाषिणी' इत्यादि उपन्यास लिखे हैं। 'दूर-भाषणी' एक टेलीफ़ोन गर्ल की कहानी है।

ननी भौमिक का 'धुलोमाटी' राजनैतिक धरातल पर शिक्षित मध्यमवर्ग की कहानी है। गुणमय माना के 'लखीन्दर दिगार' और 'कटा-भानारी' किसानों की अपनी दुख और संघर्ष भरी कथा है।

फ़ौजी जीवन से बंगालियों का कम सम्पर्क ही रहा पर बरेन बसु का 'रंगरूट' साम्राज्यवादी शक्ति के यंत्र के रूप में भारतीय सैनिक की भूमिका क्या है इसका यथातथ्य चित्रण है। इस उपन्यास की सफलता इसी बात से स्पष्ट है कि इस का पाँच विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। देवेश दास ने भी फ़ौजी-जीवन पर एक उपन्यास लिखा है।

प्रफुल्ल सरकार, भवानी मुखोपाध्याय, सन्तोष कुमार घोष, अमियभूषण मजूमदार, विमल कर, स्वराजबन्दयोपाध्याय, वारीन्द्रनाथ दास, ज्योतिरिन्द्र नन्दी इत्यादि भी ख्यातिप्राप्त उपन्यासकार हैं। महिला उपन्यासकारों में लीला राय, अन्नपूर्णा गोस्वामी, प्रतिमा बसु और लीला मजूमदार ही आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं, यों आशापूर्णा देवी, प्रभावती देवी, सरस्वती घरेलू जीवन के चित्रों के आँकने में सफल अवश्य हुई हैं पर उनके उपन्यासों में गहराई और डूब का अभाव है।

नामावली गिनाने से बँगला उपन्यासकारों के नाम और कृतियों के नाम से ही लेख भर जाएगा।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बँगला उपन्यास मध्यमवर्ग के छोटे से दायरे से निकल कर आम जनता के निकट आ गया है। उसने विषयवस्तु के क्षेत्र में व्यापकता प्राप्त की, वस्तुपरकता में तटस्थ निर्देशन ग्रहण किया, सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सजगता प्रदर्शित की तथा सच्ची-चेतना लेकर इस समय वह एक नई संभावना की ओर संकेत कर रहा है।

कौटेज नं. सी १०४२,
महानगर, लखनऊ

—प्रबोधकुमार मजूमदार

कांग्रेस का ६४ वां अधिवेशन : एक अध्ययन

यद्यपि कांग्रेसियों की फूट और आपसी संघर्ष के कारण कांग्रेस दिन-प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही है तथापि उसे देश की बड़ी राजनीतिक पार्टी होने का गौरव आज भी प्राप्त है। देश का शासन सूत्र लगभग ११ वर्षों से उसी के हाथों में है इसलिए उसकी प्रत्येक गतिविधि की ओर संपूर्ण देश अपनी दृष्टि गड़ाए हुए रहता है। कांग्रेस का अभ्यंकर नगर अधिवेशन सारे देश की चर्चा का विषय रहा है और इस बार पं० नेहरू के नेतृत्व में पूर्ण आस्था रखनेवाली कांग्रेस ने यह पुनः सिद्ध कर दिया है कि वह भारत की एक मात्र शुभ-चिंतक संस्था है।

यों तो कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन का निजी महत्व होता है परंतु अभ्यंकर नगर का विशेष महत्व माना जा रहा है। अड़तीस वर्ष पूर्व सन् १६२० ई० में इसी नागपुर नगर में कांग्रेस का एक अधिवेशन राष्ट्रपिता के नेतृत्व में हुआ था। उस अधिवेशन में शांतिपूर्ण असहयोग, स्वदेशी का व्रत और विदेशी का बहिष्कार हुआ था। यही नहीं उसी सम्मेलन से गांधी टोपी राष्ट्रीय पोशाक का पवित्र चिन्ह बन गई।

'अभ्यंकर नगर' अमर शहीद नरकेसरी बेरिस्टर-अभ्यंकर की पावन स्मृति के प्रकाशस्तम्भ रूप में जाज्वल्य हुआ है। अनेक गतिरोध के होते हुए भी अभ्यंकर जी ने कांग्रेस को जीवित रखा। सन् १६३० का समय नागपुर के आस पास कांग्रेस की परीक्षा का समय था। उस महान् विदर्भ नेता का स्वर्गवास १६३३ में हुआ था।

इस अधिवेशन में लगभग १५ लाख व्यक्तियों ने भाग लिया है और कांग्रेस की वरिष्ठ कार्य समिति ने तीन मुख्य परिवर्तन देश में करने का संकल्प किया है। वे हैं—१. भूमिसुधार २. तीसरी योजना ३. कृषि उत्पादन में वृद्धि और सहकारी कृषि। इसके अतिरिक्त विदेश नीति भारत और पाकिस्तान का सम्बन्ध और विश्व की समस्याओं पर भी विचार किया गया, यह सब आवश्यक भी था। सारा संसार एक परिवार का रूप धारण करता जा रहा है। अतः विश्व की प्रत्येक घटना का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ना स्वाभाविक है और हम उससे अछूते नहीं रह सकते।

भूमि सुधार : भारत कृषि प्रधान देश है। फिर भी यहाँ खाद्यान्न की कमी रहती है और करोड़ों मन गल्ला विदेशों से मंगाया जाता है। इस खाद्यान्न समस्या ने अनेक समस्याओं को उत्पन्न किया है। विदेशी मुद्रा की कमी, विदेशों में भारत प्रतिष्ठा और देश का स्वास्थ्य भी इसमें गिर रहा है।

नेताओं का विचार है कि यदि भूमि सुधार हो गया तो हमारी खाद्यान्न समस्या हल हो जाएगी। इसलिए एक प्रस्ताव पास किया गया है जिसमें कहा गया है कि यदि भूमि का उचित बटवारा हो जाय और उसकी अधिकतम सीमा निर्धारित कर ली जाय तो यह समस्या हल हो सकती है। यह कार्य प्रत्येक राज्य सरकार एक वर्ष के अन्दर ही कर ले। तीन वर्षों के अन्दर ही पूरे देश में सहकारी समितियों की स्थापना कर दी जाएँ और ट्रेक्टर तथा अन्य सुविधाएँ इन्हें प्रदान की जाएँ। भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करते समय कुछ सदस्यों ने आय की सीमा भी निर्धारित करनी चाही परन्तु मूल प्रस्ताव में यह संशोधन गिर गया। यह अच्छा ही हुआ है। कृषकों की आय इतनी कम है कि उसको बढ़ने देने से समाजवादी राज्य के विकास में किसी बाधा की गुंजाइश नहीं है। प्रश्न यह कि भूमि की अधिकतम सीमा का निर्धारण कैसे हो? क्या वह परिवार के प्रत्येक सदस्यों के आधार पर रहेगी? या प्रति व्यक्ति रहेगी? अभी तक जो कुछ भी हम देख रहे हैं उससे यह समस्या पेचीदा बनती जा रही है। अधिक भूमि रखनेवालों ने भूमि को घर के सदस्यों के नाम पर अलग अलग अभी से बाँट दिया है। कुछ तो प्रदेशों के मंत्रियों ने भी ऐसा किया है और कुछ लोग जल्दी जल्दी बाँटने का प्रबन्ध कर रहे हैं। भारतीय संविधान में भी परिवर्तन की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि सरकार या कोई व्यक्ति बिना मुआवजे के किसी की कोई वस्तु नहीं ले सकता। ये अनेक प्रश्न हैं जो जागरूक व्यक्तियों के मस्तिष्क में उठ रहे हैं।

कांग्रेस में आज भी बहुमत उन्हीं लोगों का है जो समाज के उच्च वर्ग से आए हैं फिर इसका विरोध इन लोगों ने अधिवेशन में भी किया और बाहर भी करेंगे। उत्तर प्रदेश के श्री चरणसिंह ने तो ऐसे तर्क उपस्थित किए थे कि उसका उत्तर कोई भी सदस्य न दे सका। और उन्हें कोई मना भी नहीं सका। नेहरू जी ने व्यवहारिक सुझाव दिया है। उनका कहना है कि आवश्यकता, समय और स्थान को देख कर ही हम इस प्रकार का निर्धारण करें तो अच्छा हो।

तीसरी योजना : किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए नियोजित कार्य-क्रम परम आवश्यक है। उसे ही योजना कहते हैं। स्वतन्त्रता के बाद हमारी दो योजनाएँ बनीं। प्रथम योजना में हमें आंशिक सफलता मिली और उसके आधार पर ही दूसरी योजना का निर्माण किया गया था। दूसरी योजना के ३ वर्ष समाप्त हो चुके हैं और दो वर्ष और शेष हैं। हमारे अर्थतन्त्र के समुचित विकास न होने के कारण दूसरी योजना की प्रगति की गति धीमी है। फिर भी कांग्रेस-अध्यक्ष ने सबके सहयोग से उसे पूरा करने का आग्रह किया है। इस अधिवेशन में तीसरी योजना के प्रारूप के सम्बन्ध में कुछ चर्चाएँ हुईं। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया कि तीसरी योजना में उद्योगीकरण, कृषि-उत्पादन तथा लघु उद्योगों की ओर विशेष ध्यान दिया जाए। नेहरू जी ने कहा है कि जब तक उद्योगीकरण नहीं होगा लाख उत्पादन बढ़ने पर हम गरीब ही रहेंगे। कांग्रेस अध्यक्ष ने तीसरी योजना का उद्देश्य इस प्रकार बताया है। १. राष्ट्रीय आय में विशेष वृद्धि २. भारी और बुनियादी उद्योगों के विकास पर बल ३. बेरोजगारी मिटाना ४. आर्थिक समानता ५. देश के औद्योगिक साधनों का विकास और खाद्यान्न के आयात पर रोक। योजना का उद्देश्य बहुत आशा भरा है परन्तु बेरोजगारी से पीड़ित और क्षुधा से व्यथित इन्सानों से हम किसी प्रकार के जोश की आशा नहीं कर सकते। किसी भी कार्यक्रम का पूरा होना जनता पर ही निर्भर है कि वह कितना सहयोग देती है। इसके लिए दो कठिनाइयाँ हैं एक तो अधिकारियों में नौकरशाही की गन्ध ज्यों की त्यों है और स्वतन्त्रता के इन ११ वर्षों में भी उनके विचार ज्यों के त्यों शासक और शासित के हैं दूसरी जनता और कांग्रेस का सम्पर्क बिलकुल कम हो गया है। कांग्रेसी नेता जनता में नेहरू जी के नाम पर वोट के लिए जाते हैं और वोट लेने के बाद उनका फिर पता नहीं लगता।

इस समय में जनता में निष्क्रियता और असन्तोष चरम सीमा पर है। समाज के ढाँचे और वातावरण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसको बदलने की अधिक से अधिक आवश्यकता है। साथ ही योजनाओं में जो रुपयों का दुरुपयोग होता है उसके लिए कदम उठाया जाना चाहिए।

कृषि संगठन : इस अधिवेशन में कृषि-संगठन पर भी एक प्रस्ताव पास हुआ। उस में कहा गया है कि सरकार कृषि-संगठन में आमूल परिवर्तन करे। भूमि सुधार और अधिकतम भूमि की सीमा निर्धारण की चर्चा भी कृषि-विकास के लिए ही की गई है। प्रस्ताव में विशेष बात यह कही गई है कि सहकारी खेती तीन वर्ष के अन्दर ही लागू कर दी जाय। प्रस्ताव में कहा गया है कि खेतीयोग्य भूमि की अधिकतम सीमा, सेवा-सहकारिता के साथ साथ सहकारी खेती हो और शेष बची भूमि की पूर्ण व्यवस्था सरकार पंचायतों के हाथों में दे दे। कई वक्ताओं ने उसका समर्थन किया और कई ने विरोध। भारत की गरीबी, खाद्यान्न की कमी, बेरोज़गारी और निर्धनता को देखते हुए सहकारी खेती का समर्थन सभी को करना चाहिए।

प्रश्न यह है कि सहकारी खेती का प्रारूप कैसा हो? क्या वह गाँव वालों की इच्छा पर छोड़ दिया जाय? क्या वह पूर्ण रूप से राज्य की ओर से कार्यान्वित हो। जैसा कि रूस आदि साम्यवादी देशों में हो रहा है, यदि गाँव वालों को यह अधिकार दे दिया जाय कि वे जब चाहें तब अपने खेत लेकर सहकारी संघ से अलग हो सकते हैं तो मामला बहुत पेचीदा हो जायगा। यदि सरकार सम्पूर्ण भूमि पर अपना नियंत्रण कर ले तो भी बुरा है क्योंकि लोगों में अपने स्वार्थ की भावना अभी उग्र है और वे किसी प्रकार भी अपनी भूमिको पूर्णतः राज्य के नियंत्रण में देना पसंद नहीं करेंगे।

उसका सबसे सुन्दर और उत्तम मार्ग मध्य का होगा। अपनी खेती का मालिक रहते हुए भी लोग सहकारी समितियों में रह सकते हैं पर अपनी खेती अलग नहीं कर सकते। कुछ इस प्रकार के विधि की आवश्यकता पड़ेगी। अच्छा यह होगा कि सरकार शीघ्र एक समिति

इसके लिए स्थापित करे और एक निश्चित मार्ग सारे देश के लिए बना लिया जाय। नेहरू जी ने कहा है कि कांग्रेसियों का कर्तव्य है कि वे जनता को इसके महत्व से परिचित कराएँ, प्रचार करें और स्वप्न तथा प्रस्तावों को साकार करें, पर यह तो भविष्य ही बताएगा कि कांग्रेसी लोग क्या करते हैं? सम्प्रति तो जनता से इनका सम्पर्क समाप्त हो गया है। हर राज्य के कांग्रेसी नेता आपस में लड़ते रहते हैं और उन्हें पद का लोभ खाता जा रहा है।

आश्चर्य की बात: इस सम्मेलन से लोग कुछ और भी आशा कर रहे थे परन्तु उन प्रश्नों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। कांग्रेस अध्यक्ष के भाषण में उनमें से कुछ तथ्यों का उल्लेख किया गया है पर बहुतों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। औरों को तो छोड़िए स्वयं नेहरू जी भी इन प्रश्नों पर मौन धारण किए रहे। ये प्रश्न हैं—बेरोजगारी, भुखमरी, प्रशासन में भ्रष्टाचार और शिक्षा।

आए दिन देश में अन्न की समस्या पर कोई न कोई घटना हो रही है। बेरोजगारी एक व्यापक का रूप धारण करती जा रही है उसके लिए कोई कदम क्यों नहीं उठाया जा रहा है? इसके क्या कारण हैं? उसकी चर्चा बड़े जोरों पर है।

दूसरी समस्या है प्रशासन में भ्रष्टाचार की। यह सभी जानते हैं, पर इसके लिए जो विभाग बना था वह भी भ्रष्टाचारी हो गया। कोई भी जागरूक नागरिक बहुत दुःखी रहता है। एक ओर तो सरकार जनता से कर्ज लेकर योजनाओं को सफल बनाने का स्वांग कर रही है और दूसरी ओर लाखों रुपयों का गबन हो जाना मामूली सी बात हो गई है।

भाईवाद और भतीजावाद का बोलबाला है। वर्षों छोटी छोटी फाइलों की कार्यवाही नहीं हो पाती। छोटे से छोटे मुकद्दमों के निर्णय में वर्षों का समय लग जाता है। क्या इन बातों से नेहरू जी परिचित नहीं हैं? अवश्य हैं, पर कुछ लोगों का कहना है कि नेहरू जी स्वयं सरकारी प्रशासन में परिवर्तन करने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। ब्रिटिश नौकरशाही में पले अधिकारी अपनी मनोवृत्ति नहीं बदल सक रहे हैं। इसलिए प्रशासन में इस प्रकार की गड़बड़ी चल रही है। देखें कब तक यह धांधली चलती है।

इस सम्मेलन में शिक्षा और शिक्षितों की समस्याओं पर मौन धारण करना यह सूचित करता है कि सभी लोग इन बेचारों की ओर से आँखें बन्द करते जा रहे हैं। पर मेरा दावा है कि योजना, प्रशासन और कोई भी सुधार इन्हीं के सहयोग से हो सकेगा। कुछ दिनों पूर्व प्रधान मंत्री जी ने अध्यापकों की दशा पर सभी प्रदेशों के मुख्य मंत्रियों को एक पत्र लिखा था शायद यही इसकी इतिश्री समझ लिया गया।

काँग्रेस अधिवेशन में कृषि के मूल्य और आय निर्धारण पर खूब चर्चा रही, पर किसी ने भी वेतन के निम्नतम और उच्चतम अन्तर को पाटने की चर्चा न की। इस देश में समाजवादी व्यवस्था का होना तब तक असंभव है जब तक एक नागरिक को तीस रुपए और एक नागरिक को दस हजार रुपए मिलते रहें। अच्छा होता यदि कांग्रेस अधिवेशन में इस पर विचार होता। पूँजीवादी भावना की समाप्ति का नाम लेकर सरकार बड़े बड़े उद्योगों में राष्ट्रीयकरण करती जा रही है और यहाँ तक कि ठोस व्यापार भी नियंत्रित करती जा रही है। इसका उद्देश्य पूँजीवादी व्यवस्था का ह्रास करना है ताकि धन-वितरण की विषमता न रहे, यह बात ठीक है और हम इसका स्वागत करते हैं परंतु लेकिन नौकरशाही में जो पूँजीवादी का प्रचार है और उसका समर्थन किया जारहा है इसकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं जा रहा है, क्यों? वितरण की इस विषमता को रहते हुए समाजवादी व्यवस्था कायम नहीं हो सकती? यदि कम वेतन पाने वालों के वेतन में वृद्धि और अधिक पाने वालों की वेतन में कमी की गई तो हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे, वर्ना नौकर शाही का रूप भी पूँजीवादी का ही एक अंग है। यह तथ्य सभी विचारकों में चिन्ता का विषय बनता जा रहा है।

३-५-८, साधना सदन
रामकोट, हैदराबाद १

—मुकुर

हर्ष और उल्लास के अक्षय स्रोत: राजस्थानी लोकगीत

आचार्य श्यामसुन्दर दास ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। लोक-साहित्य के विषय में यह और भी उपयुक्त होगा क्योंकि यह जन-मानस की सीधी और निष्कपट अभिव्यक्ति होती है। जनता द्वारा निर्मित यह साहित्य जनता का अपना साहित्य होता है। जन-मानस का सच्चा प्रतिनिधि लोक-साहित्य जन साधारण का कण्ठहार है।

लोक-गीतों में जनता का जीवन शत-शत स्वरों में मुखरित होता है। ग्रामीण जीवन की सरलता इनकी आत्मा है। ग्राम्य आशा और उल्लास का सीधा, स्पष्ट और प्रभावशाली चित्रण इनकी प्रमुख विशेषता है। क्लिष्ट कल्पना, अलंकारों की धूमधाम, वाक्‌चातुर्य के चक्रव्यूह के स्थान पर लोकगीतों में मिलेंगे हृदयहारी स्पष्ट कथन, मार्मिक चित्रण और भोली भाली कल्पना।

राजस्थान के लोक-गीत इस व्यापक कथन के अपवाद नहीं हैं। वही सरलता, वही निष्कपटता, वही उल्लासमय वातावरण और वही प्रफुल्लता आपको मरुभूमि राजस्थान के लोक-साहित्य में भी मिलेगी जो पंजाब के रोमांटिक और बंगाल के भावुक लोक-साहित्य में मिलती है। ये लोक-गीत राजस्थान के ग्रामीण जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। मरुभूमि में भी जन मानस के हृदय जल से ये पल्लवित होते रहे हैं।

पावस आता है, आशा और उल्लास का वातावरण छा जाता है। मरुभूमि के निवासियों ने न जाने कब से उसकी प्रतीक्षा की है। उमड़ते-गरजते बादलों को देख कर हृदय में भी आनन्द का सागर उमड़ने लगता है। आकाश की विद्युत् के साथ हृदय में सुन्दर भविष्य की विद्युत् चमक उठती है। लोकगीतकार ऐसे अवसर पर उल्लास से गा उठता है :

"मोटी-मोटी छीटाँ ओसरयो ऐ बदली
ओसरयो ऐ बदली
कोई जोड़ा ठेलम ठेल
सुरंगी रुत आई म्हाँरे देस
भली रुत आई म्हाँरे देस

—मोटी-मोटी बूँदों वाला बादल उमड़ आया है
यह बादल उमड़ आया है
बावड़ी और जोहड़ भर गए हैं
हमारे देश में सुन्दर ऋतु आई है
हमारे देश में अच्छी ऋतु आई है"

सावन-भादों की अंधियारी रात! दिशा-दिशा में बरसती अमृत की जलधारें। पपीहा की रटन! मयूर का नृत्य! भला लोक-गीतकार कैसे चुप रह सकता है ऐसे समय में—

"सावण तो लहरयो भादवों रे
बरसै च्याहूँ कूट
म्हारा भोरला, सावण लहरयो रे
सावणियाँ सुरंगलो रे लाल
आसी वीर कन्हैया लाल पावणो
लासी बाई गवराँ ने बैल गाड़ी जुपाय
म्हारा भोरला, सावण लहरयो रे"

—"सावन और भादों लहरा रहे हैं
चारों ओर वर्षा हो रही है
मेरे मोर, सावन लहरा रहा है
हे भाई, सावन सुन्दर है
भाई-कन्हैया अतिथि बन कर आया है
बहन गौरी को बैलगाड़ी पर ले जाएगा
मेरे मोर, सावन लहरा रहा है"

मोरे मन का प्रतीक है। बहन के मन के साथ आपका मन भी लहरा उठेगा। यही लोक-गीत की विशेषता है और यही सफलता।

साधारण हिन्दू गृहस्थ का जीवन उत्सवों का जीवन है। कभी होली तो कभी दिवाली; कभी तीज तो कभी गिणगौर। उत्सव के दिनों में ग्रामीण जीवन की प्रफुल्लता की कहाँ सीमा? महीनों पहले से उत्सव की तैयारी की जाती है। होली आती है तो रात-दिन एक हो जाते हैं। रात-रात भर चाँद ढला करता है और रात-रात भर चंग बजा करता है। लोक-गीतकार कहता है :

"रंगीलो चंग बाजणू
म्हारें वीरेजी मंडायो चंग बाजणू
म्हारो रेंगर मंड के लायो ऐ
रंगीलो चंग बाजणू"

—"रंगीला चंग खूब जता है
हमारे भाई ने इसे मंडाया है
हमारे कारीगर ने इसे मढ़ा है
रंगीला चंग खूब बजता है"

चंग बज रहा है। यह राजस्थान का वाद्य है। ढोलक से बहुत मिलता है। चंग के साथ सब मिल कर होली के गीत गाते हैं। ये 'धमाल' कहलाते हैं। गीत के स्वरों के साथ-साथ चंग बजने में भी तीव्रता आती-जाती है। वह अनेक तरह से बजने लगता है—

"चंग आंगलिया बाजै
चंग मूँदड़िया बाजै
चंग पूँचे के बल बाजै
ऐ रंगीलो चंग बाजणू"
—चंग अंगुलियों से बजता है
चंग अंगूठियों से बजता है
चंग कोहनियों से बजता है
यह सुन्दर चंग खूब बजता है

चंग और धमाल के अतिरिक्त होली की अपनी चीज है 'लूर'। यह नृत्य है और लड़कियाँ सामूहिक रूप में इनमें भाग लेती है। एक लोकगीत में लूर का वर्णन देखिए—

"होली आई ऐ सहेल्याँ मिल खेलां लूर
होली आई रे
रिमझिम-रिमझिम बिछिया बाजे
ठनक-ठनक बाजे पायलड़ी
होली आई रे सहेल्यॉं मिल खेलां लूर"

—"होली आई है
आओ सहेलियों, मिल कर लूर खेलें
नूँपर रिमझिम-रिमझिम बज रहे हैं
पायल ठनक ठनक बज रहे हैं
होली आई है,
सहेलियों मिलकर लूर खेलें"

पुत्र-जन्म के अवसर पर गृहस्थी की नौका हर्ष-सागर में झूम झूम उठती है। पुत्र-प्राप्ति के लिए भूतकाल में क्या कुछ नहीं किया गया है? राजस्थान में पुत्रजन्म के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को 'हालराँ' कहते हैं। हर्ष और उल्लास अपने स्वाभाविक रूप में इनमें छलकता रहता है।

भाई के घर पुत्र का जन्म हुआ है। बहन के उल्लास की इस समय क्या सीमा? एक लोकगीतकार इस उल्लास को शब्दों में बान्धता है:

"म्हारे वीरेजी रे बेटो जायो
सोने रा थाल बजाओ
सारे शहर में नौबत बाजे
घर-घर बँटे बधाई
सखियाँ ऐ घर घर बँटे बधाई"

—"हमारे भाई के घर पुत्र जन्मा है
सोने का थाल बजता है
सारे नगर में शहनाई बज रही है
घर घर बधाई बंटती है
ओ सखियों घर घर बधाई बंटती है"

राजस्थानी लोक-गीतों में 'बधावो' का विशेष महत्व है। ये उत्सवों और मांगलिक अवसरों पर गाये जाते हैं। ग्राम्य-जीवन में मांगलिक अवसरों का क्या अभाव? कभी नई फसल घर आती है, कभी शादी, कभी पुत्र जन्म, कभी होली, कभी तीज। 'हालराँ' के समान 'बधावो' भी आनन्द और उल्लास से भर पूर होता है। एक 'बधावो' है—

"मोत्यां रा लूमक झूमक
किस्तूरी ओ राजा बानरमाल
बधाओ जी म्हारे आवियो
हरी हरी गोबर गुणती
गज मोत्यां ओ राजा चौक पुराव
बधाओ जी म्हारे आवियो"

—"मोतियों की झालर बांधो
कस्तूरियों की बन्दनवार बांधो
हरी-हरी गोबर से आंगन लीपो
गज मोतियों से चौक पूरो
हमारे घर बधावा आया है"

एक गृहस्थी उन्नति की ओर बढ़ रही है। गृहिणी अपनी उन्नति को देख कर फूली नहीं समाती ? यह स्वाभाविक है। लोकगीतकार उसके हृदय के भावों को साकार करता है :

"म्हैं तो आंगण गार गिलो वरणां
म्हारी बिटधी रां कोडा
चोखो रे मादल घुल रह्यो
रंग रातो रे मादलियो
थारो सबद रे सुहावणों"

—मैं तो आंगन को लीपूँगी
अपनी उन्नति के हर्ष में
मेरे आंगन में सुन्दर हाथी झूम रहा है
ओ सुन्दर हाथी तेरा शब्द सुहावना है"

गृहिणी इसी तरह अपने पति और पुत्र की भी खुशी मनाती है।

लोक गीतों की यह नैसर्गिकता, यह सरलता, यह स्वाभाविकता और यह सुषमा नागर साहित्य में मिलनी असंभव है। नागर साहित्य का रचयिता बन्द कमरे में बैठ कर साहित्य-सृजन करता है, पर लोकगीतकार अपने वातावरण के अणु-अणु से परिचित होता है। लोक-गीतों में व्याप्त व्यापक हर्ष और आनन्द, नैसर्गिक, शोभा और सारल्य, स्वाभाविक उद्गारों और वर्णनों का यही रहस्य है। राजस्थानी लोकगीत इस व्यापक सत्य की पुष्टि ही करते हैं।

मालन की गली,
अलवर (राजस्थान)

—जुगमन्दिर तायल

झील जो कि गाती है

बार्टिकालोआ, सीलोन में एक झील है जिसके सम्बध में यह कहा जाता है कि वह गाती है; विशेष कर उस समय जब कि रात्रि शान्त और निस्तब्ध होती है और आकाश में पूर्णिमा का चाँद होता है। उस समय इस झील में से जिसका पानी सर्वथा खारा है-स्पष्ट रूप से संगीत के स्वर सुनाई देते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत के ये स्वर झील के तल में से आते है। यह किसी बाँस को झील के पानी में डाला जाय औरउ सके दूसरे सिरे को कान से लगाया जाय तो संगीत के उच्चस्वर में सुनाई देते हैं।

इस संगीत का संभवत: कारण यह है कि एक विशेष प्रकार की मछलियाँ इस झील में रहती हैं जिनसे कि यह सगीत उत्पन्न होता है।

—"क्रिश्चियन हैरल्ड" से

सती मयना ओ लोर चन्द्राणी

अवधी के प्राचीनतम ग्रन्थ का बंगला अनुवाद

आज से कई सौ वर्ष पूर्व तीन हिन्दी काव्य-ग्रंथ हिन्दी-भाषी क्षेत्र की सीमा पार कर बंगाल को प्रभावित कर सके। वहाँ बँगला भाषा में इनका अनुवाद हुआ। ये ग्रंथ हैं 'भक्तमाल', 'पद्मावत' और 'सती मैना या लोर चन्द्राणी।' इनमें अंतिम दो का अनुवाद अराकान की राजसभा में दो बँगला-भाषी मुसलमानों द्वारा किया गया। सती मैना या लोर चन्द्राणी संभवतः अवधी का प्रथम काव्य-ग्रंथ है। हिन्दी में अभी तक इसका प्रकाशन नहीं हो सका है।

जिस समय बँगला-साहित्य में मनसा आदि लौकिक देव-देवियों अथवा पुराणों के आख्यानों को लेकर काव्य सृजन हो रहा था, लोर चन्द्राणी के बँगला अनुवाद ने एक नूतन दिशा की ओर निर्देश किया। इस काव्य में साधारण लौकिक प्रेम कथा का वर्णन हुआ है। मूल लेखक तथा बँगला अनुवाद दोनों ही सूफ़ी प्रतीत होते हैं किन्तु इस कथा पर सूफ़ी वाद का व्यर्थ आरोप कहीं नहीं है। हम कह सकते हैं कि यदि प्रारंभ में रसूल आदि की बंदना को छोड़ दिया जाय तो संपूर्ण काव्य हिन्दू प्रभाव से ओत-प्रोत है।

१५ वीं शताब्दी के अंत में लोदी सैन्य से परास्त होकर जौनपुर का हुसेनशाह शर्की बंगाल के हुसेनशाह के पास भाग आया था। इसी के साथ मध्य-भारत के अनेक गुणी कलाकार बंगाल में बस गए। इन्हीं के द्वारा हिन्दी के उपर्युक्त प्रेम-काव्यों का प्रचार हुआ होगा।

'सती मयना ओ लोर चन्द्राणी' नाम से अनुवाद करने वाले हैं श्री दौलत काज़ी। इन्होंने अराकान शासक थिरि. थू. धम्मार (१६२२-१६३८ ई०) की राजसभा में आश्रय पाकर राजा के महापात्र अशरफ़ खाँ की प्रेरणा से अनुवाद कार्य प्रारंभ किया था। दौलत काज़ी ने राजा के नाम को संस्कृत रूप देकर श्री सुधर्म कहा है। अनुवाद की तिथि ज्ञात नहीं है, किन्तु इतना कहा जा सकता है कि यह कार्य १६२२ एवं १६३५ ई० के मध्य सम्पन्न हुआ होगा। किसी ज्योतिषी की भविष्य-वाणी से डर कर श्री सुधर्म १६ वर्ष तक अनभिषिक्त राजा रहे, तदुपरांत नरबलि आदि अनेक भयावह अनुष्ठानों के साथ १६३५ ई० में उनका राज्याभिषेक हुआ।[1]

किसी समय लोर चन्द्राणी-कथा का प्रचार समस्त उत्तर भारत में रहा होगा। मैथिली भाषा के प्राचीन ग्रंथ "वर्ण रत्नाकर" से प्रकट है कि इसकी कथा के गायन के साथ नृत्य भी होता था। भोजपुरी क्षेत्र के अहीरों की मंडली में यह अब भी बहुत लोकप्रिय है।[2] लाहौर म्यूज़ियम के संग्रह में जैन पारसीक शैली में अंकित लोर चन्द्राणी की कहानी से सम्बन्धित २४ चित्र हैं। किसी किसी चित्र के ऊपर 'लोर', 'चन्द्रा', 'मयना आदि लिखा है।[3]

"लोर चन्द्राणी" काव्य की ख्याति अराकान की राज सभा तक पहुँची होगी, किन्तु सुदूर देशवर्ती अवधी भाषा एवं दोहा चौपाइयों के छन्द में रचित इस प्रेम कथा का पूर्ण-आनन्द न ले सकने के कारण दौलत काज़ी से अनुरोध किया गया कि वे पयार छन्द एवं पांचाली-शैली में इसका अनुवाद कर डालें। दौलत के वर्णन से भी यह प्रकट होता है :

> "ठेठा चौपाइया दोहा कहिला साधने
> ना बूझे गोहारि भाषा कोनो कोनो जने
> देशी भाषे कहो ताके पाञ्चालीर छन्दे
> सकले शुनिया एन बूझय सानन्दे"

किन्तु दौलत काज़ी इसे सम्पूर्ण न कर सके, बीच में ही इनकी मृत्यु हो गई। काव्य के खण्डित अनुवाद ने अवश्य ही अराकान के शासकों में कौतूहल एवं जिज्ञासा को जागृत किया होगा। अराकान राजसभा के तत्कालीन

---

१. श्री सत्येन्द्र नाथ घोषाल-साहित्य प्रकाशिका (प्रथम खंड) के अंतर्गत प्रकाशित सती मयना ओ लोर चन्द्राणी की भूमिका, पृष्ठ ८। २. श्री विश्वनाथ प्रसाद "भारतीय साहित्य" (जनवरी, १९५६) टिप्पणी, पृ. १८९
३. श्री सुकुमार सेन बाँगला : "साहित्येर इतिहास" (प्रथमखण्ड) पृ. ५६६

आश्रित कवि अलाउल को उसके पूर्ण करने का भार सौंपा गया। इस समय आराकान के शासक थे चान्द-थधम्मा। अलाउल ने इन्हें चन्द्र सुधर्मा कहा है। चन्द्र सुधर्मा के महापात्र सुलेमान की प्रेरणा से यह कार्य पूरा हुआ। अलाउल (बँगला में आलाओल) का वास्तविक नाम ज्ञात नहीं है, यह उनका तखल्लुस है। इनका जन्म फतेहपुर के जलालपुर में हुआ था। सुकुमार सेन यह स्थान पश्चिम अथवा मध्य बंगाल में स्वीकार करते हैं। यहाँ से अनेक कठिनाइयों का सम्मान करते हुए अलाउल अराकान पहुँचे थे। इन्होंने अपने प्रथम पृष्ठपोषक अराकान राज्य के सामंत मागन ठाकुर की प्रेरणा से 'पद्मावत' का बँगला अनुवाद किया था।

सती मयना ओ लोर चन्द्राणी का संशोधित संस्करण १३६२ बंगाब्द में श्री सत्येन्द्रनाथ घोषाल के सम्पादन में 'विश्वभारती' द्वारा साहित्य-प्रकाशिका में प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका में घोषाल महाशय ने कहा है कि अलाउल के अनुवाद में वह सरसता एव काव्य-चमत्कार नहीं है जो कि दौलत काज़ी की रचना में है। इसका कारण वे अलाउल की व्यस्तता मानते हैं। उस समय अलाउल 'पद्मावत' के अनुवाद में दत्तचित्त थे। अलाउल ने यह अनुवाद (लोर चन्द्राणी) १६५६ ई० में समाप्त किया था।

वटतला द्वारा प्रकाशित लोर चन्द्राणी काव्य के १६८ पृष्ठों में १०३ पृष्ठ दौलत काज़ी द्वारा अनूदित हैं, शेष ६५ पृष्ठ अलाउल के हैं, जिनमें ४६ पृष्ठ व्यापी अवान्तर कथा है, जो संभवतः अलाउल ने स्वयं गढ़ कर जोड़ दी है।[1]

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार इसका असली नाम चन्द्रायन था। यह अवधी भाषा का सबसे प्राचीन काव्य था। १३७० ई० में मुल्ला दाऊद ने फीरोज़शाह तुगलक के प्रधानमन्त्री खानजहाँ मकबूल के पुत्र और उत्तराधिकारी जूनाशाह के संरक्षण में उसी के लिए बनाया।[2]

बँगला अनुवाद में लिखा है—'ठेठ चौपाया दोहा' कहिला साधने', जिससे प्रकट है कि मूल लेखक 'साधन' थे। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कहना है : "मूल काव्य में दो कथाओं का मेल था। एक थी लोरिक की पहली पत्नी मैना मालिन की कहानी, जिसे साधन नामक कवि ने अवधी भाषा में "मैनासत" के नाम से काव्य बद्ध किया था।...लोरिक की कथा का दूसरा भाग चन्द्रा के साथ उसके प्रेम और विवाह से सम्बन्ध रखता है। इसे ही मुल्ला दाऊद ने अवधी में काव्य बद्ध किया था और मूल काव्य का नाम 'चन्द्रायन' रखा था।[3]

'मैना सत' की एक खण्डित प्रति श्री विश्वनाथ प्रसाद को प्रो० हसन अस्करी से प्राप्त हुई है। इसके आरंभ और अन्त के पृष्ठ फटे हुए हैं, बीच के केवल १२ पृष्ठ शेष हैं। इस पोथी के पृष्ठों के आलोक चित्र आगरा-विश्वविद्यालय के हिन्दी विद्यापीठ में सुरक्षित हैं। जोधपुर राज्य के पुस्तकालय में डा० अग्रवाल को 'लोर चन्द्राणी' की संपूर्ण प्रति प्राप्त हुई है। ये विद्वान् लोग मैनासत और लोरचन्द्राणी के मूलपाठ का उद्धार करने का प्रयास कर रहे हैं। यह काव्य जायसी से भी १५० वर्ष पूर्व लिखा गया था। जिस काव्य की कीर्ति-पताका बँगालियों द्वारा अराकान तक फहराई गई उसके मूल का पाठ-उद्धार अत्यावश्यक है। इस कार्य में बँगला अनुवाद से बहुत सहायता मिलेगी। डा० अग्रवाल द्वारा उद्धृत मैनासत की पंक्तियों से दौलत काज़ी द्वारा अनूदित पंक्तियों का कितना सादृश्य हैं :

"एक एक करतहिं जिउ देऊँ
जग दोसर को नाँव न लेऊँ
फाटहि तासु नारि को हिया
एक छाड़ि जेहि दोसर किया" (अवधी)

"एक एक करि मुइ दिमु निज प्राण
जगते दोसर नाम ना लइमु आन
फाटउक से नारीर हृदय दारुण
एक छाड़ि भावय ये दोसरक गुण" (घोषाल संपादित बँगला संस्करण—पृ. ११५)

संक्षिप्त कथा : लोरक राजा की रानी मयनावती अत्यधिक सुंदरी, प्रियंवदा, पतिव्रता, सर्वकलायुक्ता एवं

१. सत्येन्द्रनाथ घोषाल-साहित्य प्रकाशिका (सतीमयना ओ लोरचन्द्राणी) प्रथम खण्ड पृ. ८, ६ २. डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल : भारतीय साहित्य (जनवरी १९५६), पृष्ठ १६४ ३. —वही—पृष्ठ १६४,१६५

नूतन यौवन सम्पन्ना थी, दोनों पति-पत्नी क्षणभर का भी विच्छेद नहीं सहन कर सकते थे। किन्तु पुरुष जाति अति निष्ठुर होती है, मधुकर के समान कभी एक पुष्प से सन्तुष्ट नहीं रह सकती। राजा अचानक रानी और वृद्ध मंत्रियों को राज्य सौंप कर वन में घूमने लगा, वहाँ उसकी भेंट एक ऐसे योगी से हुई जो एक स्वर्ण घट और सुन्दर चित्र का पट लिए घूम रहा था। परिचय से ज्ञात हुआ कि यह चित्र गोहारी देश के मोहरा राजा की राजकुमारी चन्द्राणी का है। चन्द्राणी का विवाह दुर्जय वीर वामन से हुआ था। यह घरजमाई, वीर, नपुंसक और वामन था। वह राजकुमारी के शयन कक्ष में नहीं जाता था। राजकुमारी सोलहों शृंगार के साथ यौवन सुलभ उमंग लेकर उसकी प्रतीक्षा करती रहती। कठिनाई से यदि मिलन होता भी तो वामन वीर रात्रिभर गंभीर निद्रा में निमग्न रह कर प्रातः उठ कर चला जाता। क्षुब्ध होकर चन्द्राणी ने ऐसे मूर्ख पशु के साथ रहना अस्वीकार कर अलग एक भवन में रहना प्रारंभ कर दिया और प्रतिज्ञा की कि यदि उसके साथ पुनः मिलन हुआ तो विषपान कर प्राण त्याग कर देगी। योगी ने जिस दिन राजकुमारी का रूप देखा उसीदिन से मतवाला होकर घूमने लगा। लोरक योगी के मुख से कथा सुन कर राजकुमारी के दर्शन के लिए चल पड़ा।

चन्द्राणी ने राज सभा में उपस्थित लोरक को गवाक्ष से देखा तो मूर्च्छित हो गई। अन्य अवसर पर धाय ने दूतीकार्य करते हुए चतुरता के साथ सभा-मध्य-स्थित लोरक को दर्पण में चन्द्राणी का प्रतिबिम्ब दिखा दिया। दोनों ही अत्यधिक संतप्त रहने लगे। मंदिर में स्थित योगी वेश धारी लोरक और चन्द्राणी को एक दूसरे का दर्शन कराया गया। इससे काम-वेदना और बढ़ी। वह चन्द्राणी के भवन के आसपास चक्कर काटने लगा।

एक दिन उसने बर्छी में रस्सी बाँध कर ऊपर फेंकी, चन्द्राणी की सखियोंने उसे उखाड़ कर फेंक दिया। कई बार विफल प्रयास होने से लोरक को बहुत दुःख हुआ। अंत में उसने देवताओं का स्मरण कर पूर्व वेग से बर्छी फेंकी जो भवन की ऊपरी शिला में दृढ़ता के साथ भिद गई। सखियाँ इस बार न उखाड़ सकीं, चन्द्राणी को हर्ष हुआ। राजकुमारी ने लोरक को धोखा देने के लिए एक जैसी चार शय्याओं की रचना कर एक जैसे वस्त्र धारण कर तीन अन्य सखियों के साथ शयन किया। खड्ग-धारण कर लोरक भवन के ऊपर चढ़ आया। तीन शय्याओं के नए सारसंजाम को देखकर वह समझ गया कि ये केवल आज के हैं, चन्द्राणी का सामान पुराना होगा और वह चन्द्राणी का पलंग पहचान कर उस पर जा बैठा। सखियों ने हर्षध्वनि की। इस प्रकार नित्य-नित्य रस-केलि होती रही। वामन वीर शिकार खेल कर राजधानी लौटा तो चन्द्राणी घबड़ाई। अंत में लोरक उसे रथ में बिठा कर भाग निकला, परम क्रुद्ध वामन ने उसका पीछा कर भयंकर युद्ध किया, किन्तु अंत में लोरक द्वारा वह मारा गया।

वन प्रदेश में प्रेमी की जंघा पर सिर रख कर चन्द्राणी सो रही थी, तभी नाग के दंश से उसकी मृत्यु हो गई। शंख चक्र धारी योगी ने प्रकट होकर उसे प्राण दान किया। चन्द्राणी के माता-पिता ने भी नए जमाता को स्वीकार कर लिया।

इधर दुखिया मयना शंकर-गौरी की आराधना करती हुई पति के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। छातन नामक एक अन्य राजा ने मयना के भरमाने के लिए रत्तना (रत्ना) नाम की दूती भेजी, जो उसके हृदय में काम तरंग भड़का कर छातन की ओर प्रेरित करने की चेष्टा करने लगी। बारह मासा के वर्णन के द्वारा प्रत्येक मास की स्थिति का वर्णन दूती करती है। आषाढ़ से प्रारंभ होकर जेठ तक आते आते ग्रंथ अधमाप्त रह गया, क्योंकि दौलत काजी की मृत्यु हो गई।

अलाउल ने इसे इसप्रकार पूरा किया :

रत्तना मालिनी के पाप-प्रस्ताव से क्रुद्ध होकर मयना ने उसका मुख काला कर गदहे की पीठ पर बिठा कर नगर से बाहर कर दिया। मयना का विरह-दुःख दूर करने के लिए उसकी सखी कहानी सुनाती है, जिसका कुछ अधिक विस्तार होगया है। यही अलाउल की अवांतर कथा है।

कहानी से आश्वस्त होकर मयना ने राजा लोर के पास एक चतुर ब्राह्मण पंडित को भेजा, जिसने मैना पक्षी और अपनी सांकेतिक भाषा से राजा के समक्ष मयना का विरह दुःख निवेदित किया। राजा प्रभावित हुआ। उसने अपने पुत्र प्रचंडतपन का विवाह माणिक्यपुर की राजकुमारी चन्द्रप्रभा से कर तथा उसे राज्य भार सौंप चन्द्राणी के साथ अपनी जन्मभूमि के लिए प्रस्थान किया। वहाँ दोनों रानियों के साथ वह सुख-

विहार करता रहा। उसकी मृत्यु होने पर दोनों रानियाँ सती हो गईं।

'पद्मावत' से कथा-साम्य : (१) दोनों काव्यों में किसी अन्य के मुख से नायिक के रूप का वर्णन सुन कर (लोर चन्द्राणी में चित्र भी देख कर) दोनों के नायक मुग्ध होते हैं।

(२) दर्पण एवं गवाक्ष में रूप दर्शन। अंतर यह है कि पद्मावती में यह देखादेखी प्रतिनायक के साथ होती है और लोर चन्द्राणी में नायक के साथ।

(३) विरहिणी नायिका के पास अन्य राजा द्वारा दूती भेज कर सतीत्व भंग की चेष्टा। 'पद्मावत' में देवपाल की दूती और यहाँ छातन की दूती।

(४) प्रथम रानी की उपेक्षा कर द्वितीय के प्रेम-जाल में नायक का आबद्ध होना।

(५) प्रेमिका से क्षणिक बिछोह। 'पद्मावत' में जलयान का भग्न होना और लोर चन्द्राणी में चन्द्राणी सर्प-दंश से मृत्यु। सर्प-दंश से नायिक की मृत्यु और किसी योगी द्वारा जीवन-दान का आख्यान भारतीय लोक कथा की परम्परा में आता है। 'ढोला मारू रादूहा' में भी इसी प्रकार की कथा का वर्णन है।

(६) प्रथम रानी का संदेश पाकर नायक का प्रत्यावर्त्तन, दोनों रानियों के साथ सुखपूर्वक जीवन यापन, नायक की मृत्यु के उपरान्त दोनों रानियों का सहमरण आदि।

भाषा, छन्द-विधान, धार्मिक उदारता आदि की दृष्टि से भी दोनों काव्यों के मूल रूपों में समानता लक्षित होती है।

काव्य-सौन्दर्य : दौलत काज़ी और अलाउल ने मूल की रक्षा करते हुए भी अपने अनुवादों में स्वतन्त्र काव्य-शक्ति का परिचय दिया है। दोनों ही बँगला, अवधी के अतिरिक्त फ़ारसी और संस्कृत के पण्डित भी थे। उनके काव्य पर घोषाल महाशय ने जयदेव, कालिदास, वाल्मीकि, आदि संस्कृत कवियों के प्रभाव लक्षित किए हैं।

प्रेम-काव्य होने के कारण शृंगार रस का वर्णन ही प्रधान है। नारी का नख-शिख वर्णन पारम्परिक है किन्तु सुन्दर है :

"मन्मथ मथित ये सम्पूर्ण श्रीफल
निविड़ निर्मल कुच मुकुल कोमल
नाभिकुण्ड नहे रति क्रियार सर्वस्व
मदनेर विभाहेतु मङ्गल कलस
निर्मल रातुल अंग केतकी समान
भरमे भ्रमर पाँति धरए जोगान" पृ० ४६

लोर और चन्द्रा के पारस्परिक प्रेम में अतृप्त काम की छटपटाहट अधिक है, किन्तु सती मयना के विरह-निवेदन में भारतीय पत्नी की चरित्र गरिमा है। उसकी उक्तियाँ पढ़ कर नागमती के विरह-वर्णन का स्मरण हो आता है। कुट्टनी के बार बार भरमाने पर भी वह यही कहती है—"मुझे और कुछ नहीं सुहाता, यदि ब्रह्मा प्रियतम से मिला दे तो अपने नेत्रजल से उनके चरण पखारना चाहती हूँ।"

"मालिनी मोर मने आन नाहि भाय
नयनेर जल दिया,
से पद धोलाइमू गिया
यदि विधि मे बन्धु मिलाय" पृ. १३०

दौलत काज़ी और अलाउल दोनों ने तत्सम बहुला बँगला भाषा का प्रयोग किया है। पयार छन्द के साथ कहीं कहीं त्रिपदी छन्द का भी प्रयोग है। जयदेव और विद्यापति जैसी रचित त्रिपदी छन्द में 'ब्रजबूलि' का रस मिलता है। दौलत की एक त्रिपदी का अंश उद्धृत है :

"शुचि रुचि शीला, पुनि नव विलासनी
नवपल्लव अति साजे
माधुरी लोभेत मधुकर झंकृत
पिबइ इस भ्रमि भ्रमि गाजे"

अनुवाद की भाषा निश्चय ही बँगला है किन्तु उसपर एक ओर मैथिली का प्रभाव दृष्टिगत होता है तो दूसरी ओर यत्र-तत्र असमिया का भी।

दौलत काज़ी का व्यक्तित्व : दौलत काज़ी उदार महिष्णु मुसलमान थे। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के समान ही अपने को अल्प बुद्धि कहा है। सूफ़ी होने के नाते उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही बिस्मिल्लाह और मुहम्मद की वन्दना की है। यहाँ भी वे हिन्दू प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं। बिस्मिल्लाह का स्मरण करते हुए भी यम का वर्णन कर गए हैं :

"विरिमल्ला प्रभाम एक नाम निरंजन
ये नाम स्मरणे कार्यसिद्धि सर्वस्थान
कि करिब यमदूते विपक्ष विपाद
सर्वसिद्धि जय जय से नाम प्रमाद पृ० १

जायसी के समान ही वे हिन्दू रीति-नीति, कथा, विश्वासों आदि से सुपरिचित थे। उन्होंने पूर्ण आस्था के साथ हरगौरी, काली, विष्णु आदि देवताओं का नामोल्लेख किया है। बंगाल में तांत्रिकों का जोर रहा है। बौद्ध तांत्रिकों की श्रेणी ही आने वाले पटवा योगी लोग मनसा आदि के पट-चित्र लेकर घूमा करते थे। दौलत के काव्य में वर्णित योगी इसी प्रकार का साधक लगता है।

अलाउल द्वारा अनूदित अंश की अवान्तर कथा नरबलि का हुआ उल्लेख है, यह प्रथा भी तांत्रिकों की है। पूर्वी देशों, विशेषतः कामरूप में इसका प्रचार रहा है।

हिन्दी विभाग,
बी. एस. एस. डी. कालेज,
कानपुर

—डॉ० रमानाथ त्रिपाठी

उत्तर प्रदेश का एक लोक गीत

किक्कर चाल्लूँ तावली

आकाश में उमड़ती घुमड़ती घटाएँ। रुम झुम बरसने नीर का मधुर संगीत; समस्त गाव अन्धकार में डूबा; शान्त निस्तब्ध। दूर कहीं धीमे स्वर में बज उठी बाँसुरी। यह अभिसार निमंत्रण था उसके लिए। उसका मन-मयूर नाच उठा इस प्रणय वेला में। वस्त्रों की पिटारी खोली। सर्वोत्तम परिधान धारण कर झमकते आभूषणों के भार में दबी वह उद्यत हुई चलने को उस ओर जिधर, जहाँ उसका सांवरा बैठा एक अनोखी भाषा, में पुकार रहा था उसे।

छनन, झनन। केवल एक कदम। और तभी उसे अपनी स्थिति का भान हुआ। वह न जा सकेगी। परिस्थितियाँ उसके पैरों में विवशता की शृंखला डाले अट्टहास कर रही थीं। देखिए एक लोक गीत में यह भाव कैसे सुन्दर ढग में गाया जाता है:—

किक्कर[१] चाल्लू राव जी, मेरे बिछुवों की झणकार रे।
बिछुवों उप्पर हरा नगिन्ना, जुग्नड छाप्पे दार रे।
किक्कर धाऊँ तावली[२], मेरा लहंगा पच्छाई[३] दार रे।
लहंगे उप्पर अटेरन चोली, स्यालु[४] सितारे दार रे।
किक्कर चाल्लूँ राव जी, मेरे बिछुवों की झणकार रे॥
रुम झुम-रुम झुम बरखे पाणी, घणा[५] दूर चौपाल रे।
अगल बगल में ननदी सोया, दिवरा सोया बाहर रे।
बीचि बगड़[६] के कुत्ता डोल्ले, टाट्टी लागी दुआर रे।
किक्कर चाल्लूँ राव जी, मेरे बिछुवों की झणकार रे॥

'रामाश्रम'
बिजनौर (उत्तर प्रदेश)

—मदन स्वरूप 'मनोज'

१. कैसे, २. शीघ्रता से, ३. १६गजा ४. ओढ़नी, ५. अधिक, ६. घर का आंगन।

रेखा-चित्र

छपरा का पोखरा

यह छपरा का पोखरा है। गर्मी के दिनों में सूख जाता है। केवल चनियाँ (पेटे में) कुछ पानी रह जाता है। जिसके चारों ओर सूखी पत्तियाँ पेड़ों से गिर कर जमा हो जाती हैं। भैंसें आकर मड़िया लेती हैं। सूखी काली मिट्टी लोग अपना घर पोतने के लिए ले जाते हैं। बड़ी चमकदार सफ़ेदी इसमें होती है। गाँव इसके चारों ओर हैं। पर कोई एक मील कोई आधा मील की दूरी पर। पुरी सुनसान जगह पर स्थित है। हाँ, इसके भीटों पर लगे हुए पेड़ इसके संगी साथी हैं। पहले इसके चारों तरफ़ बाँस थे। पश्चिम और उत्तर के भीटों पर तो अब भी आम और महुआ के अनेक पेड़ हैं। पर दक्षिण और पूरब में नहीं। हाँ, कइत का छोटा-सा पेड़ जिस पर आजकल छोटे-छोटे कठोर और सफ़ेद फल लगे हुए हैं, पूरब के भीटों पर ही है। जिससे सटकर हमारी टेढ़ी-मेढ़ी राह जाती है। पेड़ पुराने हैं। उनका स्वास्थ्य ढल रहा है। पर गर्मी के महीनों जब इनमें फल लग जाते हैं, तो इनकी जवानी और ज़िन्दगी लौट आती है। रमई अहीर की मटई पड़ जाती है। उत्तर वाले भीटे पर, सबसे ऊपर छोटी सी मड़ई। इसके तीन ओर मामूली-सी टाटियाँ भी लगा दी जाती हैं। यहीं चम्पा अपनी टूटी खटिया पर बैठती है। रह-रह कर आमों की ओर निहारती है। कहीं कोई मार तो नहीं रहा है उसके प्यारे आमों को। कभी-कभी हवा का गर्म झोंका आता है। टाटियों को फाड़ कर चम्पा के शरीर पर, कनपटी पर, झुलसती हुई लू लगती है। वह सिहर उठती है। डर जाती है। कहीं लू न लग जाए। वह बीमार न पड़ जाय और अपनी सहेली मोनिया की तरह मर न जाए। पर वह घर नहीं जाती घर दूर है और लू तेज अंगार-सी। वह क्या है? बवण्डर जो बढ़ता जा रहा है। आसमान छू रहा है। नटवा (भूत) है। कुंआनों नदी पर पानी पीने जा रहा है। कहीं वह हमारे झोपड़ी में गुजर जाय। तो हमें पकड़ लेगा। नहीं, नहीं, यह नटवा नहीं है। नटवा की क्या शक्ति कि इतना ऊंचा बवण्डर उठा दे। ये तो इसी पोखरा पर यानी छपरा के पोखरा पर के बाबा साहब हैं। यहीं आ रहे हैं। मरजू जी का पानी पीने गये थे। वे कुंआनों का पानी नहीं पीते। उन से कोई डर भी नहीं, वे तो हमारे रक्षक हैं। हमारे बाबा उनके बड़े भक्त थे। हर महीने जेवनार चढ़ाते सूरती का पहला बीरा उन्हीं को देते थे। चम्पा की चिन्ता दूर हो गई। हाथ जोड़ कर बाबा साहब को सर झुका लिया। उसकी दृष्टि पानी के घड़े पर पड़ी। नया नया लालटेम चमकता हुआ घड़ा। पानी से भरा हुआ है। पानी घड़े की बाहरी सतह तक मिल गया है। चम्पा उतर गई खटिया से, उसने पानी पीया--एक लोटिया, दो लोटिया और यह तीसरी लोटिया। डकार आ गई। बड़ा मीठा था पानी आम के रस जैसा। चम्पा सो गई। आधा शरीर चारपाई पर आधा जमीन पर लटक रहा है। शरीर पसीने से भरी जा रहा है और चम्पा बेखबर सो रही है। तेज लू की सेकड़ों लपटें आईं, आम गिरे, कच्चे पक्के न जाने कितने। अनेक बवण्डर आए, गए। कुछ राहगीर आए, किसी ने आम बीन लिए। कोई नहीं बीना। एक युवक आया प्यासा था। झोपड़ी के पास आकर रुक गया। अन्दर कैसे जाए, जवान लड़की सो रही है। और वह भी बेखबर। आंचल उड़ गया है। बाल लटक रहे हैं। मुख लाल हो गया है। कैसे पानी पीए युवक? कैसे जगाए इस लड़की को? लड़की अभी बहुत जवान है और वह भी जवान। युवक पलट आया। पेड़ के नीचे बैठ गया। नीचे पृथ्वी पर देखा चींटियों की सेना जा रही है। हजारों चींटियाँ एक कतार में आगे पीछे चल रही हैं।

शिक्षित सैनिकों-सी और बीच में एक हाड़े (बरैय) के शव को सैकड़ों चींटियाँ लिए चली जा रही हैं। लगता है युद्ध हुआ है और उसमें अन्त में चींटियों के संयुक्त मोर्चे की जीत हुई है। खर खर खर खर टप। आम गिरा। बड़ा सुन्दर आम है। युवक के सामने गिरा है। पर वह उठाए कैसे।

सूरज ढल रहा है। धूप नरम और ठण्डी पड़ रही है। चिड़ियों का शोर-गुल बढ़ रहा है। चम्पा की

नींद टूट गई। अरे राम कितनी देर तक सोती रही मैं, झट टोकरी ली, आँखें मलीं, आम बीनने चल दी। तमाम आम थे। ठोकरी भर गई। सहमा नजर युवक पर पड़ी। जो चम्पा को थोड़ा-थोड़ा देख रहा था। चम्पा सहमी। पर आम बीनना था ही। नज़र नीचे कर युवक के निकट का आम उठाने लगी। युवक ने हिम्मत करके पूछा, पानी है ?

''हाँ, आइए। उसने मड़ई में आकर युवक को पानी दिया। चम्पा के हठ करने पर युवक ने खूब आम खाए। मलदहवा, कोनहंवा, सेंनुरिया, बेलउआ। युवक चला गया, बहुत दूर जाना था। वह चम्पा के के बारे में सोचता रहा।

आम गए। धीरे-धीरे झर एक आध कहीं-कहीं लुके-छुपे बचे हैं। मड़ई हट गई। पानी बरसने लगा। काली-काली घटाएं दौड़ती रहीं। चारों ओर का पानी आ-आकर पोखरे में एकत्रित होने लगा। उस रात बड़ा पानी बरसा। पोखरा लबालब भर गया। कितना मटमैला पानी है। पानी में छोटी-बड़ी लहरें उठने लगीं। किनारे किनारे खर कतवार मैल जम गई। धीरे-धीरे घासें उगीं। नंगे, मटमैले, बलुहे भींटों का का तन घासों की चादर से ढ़क गया। किसानों ने खेतों की जो पोखरा के चारों ओर थे, धान बोना प्रारम्भ कर दिया। आज कल बहार है। चारों ओर हट-हट चल बेटा, तब तअ्र तअ्र, बऊँ बऊँ की आवाज़। चम्पा धान की टोकरी लेकर आ गई। उसका खेत बोया जा रहा है। उसने दूर से आमों की ओर देखा। हरी-हरी धुली पत्तियाँ थीं। डालों पर काई जम गई थी। पर आमों बिना सब बेकार था।

धान बढ़ गए। हरे-हरे धान। पानी फिर बरसा, बाढ़ आ गई। बहुत रोके नहीं रुकी। चारों ओर समुद्र छा गया और रात-दिन चलने वाली राह बन्द हो गई। दूर से पोखरे के भींटे और उस पर के पेड़ दिखाई दे रहे हैं। बाढ़ हट गई। धान सड़ गए। सब बीरान हो गया। धरती बदबू करने लगी। सामने भयंकर अकाल खड़ा हो गया। किसानों का दिल बैठ गया।

कार्तिक आया। फिर क्या था, हल-बैल निकल पड़े। रात ही से जोताई होने लगी। मटर, चना, गेहूँ सब बोया गया। अच्छी फ़सल उगी। बाढ़ उपजाऊँ मिट्टी डाल गई थी। अगहन, पूस आया। पोखरा के तीन कोनों पर बोदर बन गए। सर-सर बेड़ी चलने लगी। झकाझोर सिंचाई हुई। पानी के लिए झगड़े हुए। गाली-गलौज सब कुछ। खूब मस्ती में आज पानी चल रहा है। हर बोदर पर कऊड़ा (आग) जल रहा है। चारों ओर लोग ताप रहे हैं। हंसी-मजाक हो रहा है। बाज़ी लग गई। बोदर भर गया। पानी नाली तोड़कर बह चला। सारे खेतों को पोखरे ने पानी दिया। धन्य हैं वे पुरखें जिन्होंने इसे खोदा था। इसके किनारे-किनारे बाग़ लगाया था। एक महात्मा ने कुटी बनाई थी। रात को सत्संग के समय चारों ओर के गाँव से लोग यहाँ आते। अब तो उस कुटी का कोई अवशेष भी नहीं है। गाँव के जमींदार दुबे जी के बाप-दादो ने महात्मा को मरवा डाला था और झोपड़ी पस्त करा दी थी।

शिवरात्रि है आज। बैजूनाथ मेला लगा है। स्त्री-पुरुष झुराड के झुराड मेले में जा रहे हैं। वह गीतें खूब जमी हैं। लहरदार फगुआ होता आ रहा है। और यहाँ पेड़ के नीचे ही भींटे पर लोग जम गए हैं। ढोल झाल बज रही है। ये लोग औरतों की गोल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शायद बराबरी का फगुआ जम जाए। चैत्र आया, खेत कटने लगे। किसान मजदूर पोखरे के पेड़ों की शीतल छाया ले रहे हैं। उस बुड्ढे ने अपना गेहूँ का बोझा यहीं पटक दिया है। बहुत भारी था। खेत खाली हो गए। दखिन तरफ ५ महुआ के पेड़ चूने लगे। महुआ गिरने लगा। चम्पा महुआ बीनने आई थी। पर उसे ओझा जी के लोगों ने खदेड़ दिया। उससे कहा गया पेड़ उसका नहीं है। यह तो दुबे जी का था इसे उन्होंने भींटा समेत रामेश्वर ओझा को बेंच दिया। पोखरे का तो सब कुछ बिक गया। रमई के घर भर को जैसे गोली लग गई हो। पटवारी के पास गया बेचारा। पता चला पोखरे के पेड़ उसके नाम नहीं हैं। और न भींटा है। सब दुबे जी के नाम हैं। भींटे दुबे जी को खुद काश्त लिखे हैं। कितनी असत्यता है। इन ऊँचे-ऊँचे भींटों पर कब खेती हुई थी। पेड़ तो रमई के बाप-दादों ने लगाया था। जग जानता है, पेड़ रमई का है। रमई महुआ बीनने जाता रहा। वह जान देने को तैयार है। यह क्या हुआ रमई और चार और किसान थाने पर पकड़ कर ले जाए गए। उन्हें पीटा गया।

गाली दी गई। और फिर चालान हो गया। ११७ और १०७ का मुकदमा चल रहा है। रमई छूट कर आ गया है। किसान उसके साथ हैं। पंचायत के चुनाव में रमई खुपरागांव का सभापति चुना गया है। दुबे जी का आदमी हार गया है। अधिकतर किसान रमई के साथ हैं। कुछ दुबे जी के साथ भी। रमई पोखरा की भींटे समेत सार्वजनिक सम्पत्ति बनाना चाहता है। गांव वालों का पोखरे के लिए निर्णायक संघर्ष चल रहा है। लगता है पोखरा, भींटा और उसके पेड़ सबके हो कर रहेंगे।

१०४२ जैन भवन, अर्जुन नगर,
कोटला मुबारकपुर नई दिल्ली

—विश्वमित्र उपाध्याय

गुजराती की वर्तमान कहावतें

१. तेरा तेल गया,
मेरा बाल गया।

२. सरदी में शक्ति,
चौमासा में भक्ति।

३. मियाँ भारत के स्वप्न लेते हैं और
हरिजन को कहते हैं कि पाकिस्तान में जाकर रहो।

४. बेल दृती है तो वृक्ष के ऊपर
औ[illegible]सूखती है तो भी वृक्ष के ऊपर।

५. छापे और बाजे के सूरमा एक जैसे
नहीं होते।

६. जैसा हुजूर,
वैसा हुजूरिया।

गुजराती "कुमार" से

संग्रह : रतिलाल 'अनिल'

घुँघरू

दूसरे महायुद्ध के दिन थे। आषाढ़ का महीना लग चुका था। बाहर खेत-खलियानों में काम का जोर था लेकिन आदमी इस बार ढूँढे नहीं मिलते थे। गाँव के नौजवान सैना में भरती करके समुद्र पार भेजे जा रहे थे। सारा गाँव उदासी और सूनेपन के धुन्धलके में खो सा गया था। हालाँकि हमारे आँगन में खड़े पेड़ के जामुन पक कर काले स्याह पड़ चुके थे। लेकिन इस बार मेरा जामुनों की ओर ध्यान नहीं गया और न ही मैं पहले की तरह अड़ोस-पड़ोस के लड़के-लड़कियों को जामुन तोड़ने के लिए बुलाने ही गया। दरअसल अब मैं बालपन की मंजिल पार कर के जवानी में पैर रख रहा था। मुझे नयी नयी बातें अपनी ओर आकर्षित करने लगीं थीं। हमारे गाँव के लोग दुनिया भर में फैले थे। और रौनकी डाकिया की दोस्ती ने मेरा सम्बन्ध सारी दुनियाँ से जोड़ दिया था।

मुन्डेर पर जैसे ही कौवे ने काँव काँव की रट लगानी शुरू की वैसे ही मैं रोटी के कोर थाली ही में छोड़ कोठे की छत पर चढ़ आया। माँ पुकारती रह गई—मेरे चाँद बेटे, रोटी तो खाता जा, मेरे लाल, अब तू बच्चा नहीं है। रौनकी आता ही होगा। घुँघरूओं की आवाज तो आने दे।

लेकिन मैने सदा की भाँति माँ की बात अनसुनी कर दी। माँ के यह वाक्य सुनते सुनते मेरे कान अभ्यस्त हो गए थे। कौवे का शोर सुनते ही मै कौठे की छत पर चढ़ जाता और एड़ियाँ उठा उठा कर रौनकी डाकिये की बाट देखा करता था। जैसे ही मै ऊपर छत पर आकर खड़ा होता तो घुंघरूओं की आवाज से मेरे दिल के तार बज उठते और शरीर मे एक झरनाहट सी फिर जाती। रौनकी डाकिया आ रहा होता। घरों से बाहर निकल द्वार पर खड़ी उसकी राह ताकती माताओं को सुदूर के देशों में रोजी की खातिर गए अपने बेटों, पत्नियों को अपने पतियों और बहनों को अपने भैय्यों की चिट्ठियों का इन्तजार होता और वे बड़े ही उत्कण्ठित स्वर में दहलीज के बाहर आकर उससे पूछतीं-रौनकी बाबा, हमारी कोई चिट्ठी तो नहीं है।

"नहीं है कर्मावालियो! यह संक्षिप्त सा उत्तर सुनकर वे अपना रोजमर्रा का अगला वाक्य दुहरातीं फिटे मुँह इन डाकों के, चींटियों की तरह रींगती हुई ये डाकें चलती हैं और फिर चिट्ठियों को पहुँचने में महीनों लग जाते हैं।

आखिर उन्हें इसी बात पर संतोष करके चुप रह जाना पड़ता कि लड़ाई का जमाना है, चिट्ठी आने-जाने में देर-सबेर हो ही जाती है।

फिर बड़ी उम्र की औरतें रौनकी से ठठोलियाँ करने लगतीं। और कोई सास अपनी बहू को कहती हुई सुनाई पड़ती—जा री, रौनकी के लिए जल्दी से कादनी से एक कटोरा दूध निकाल ले आ। बेचारा पांच गाँवों की परिक्रमा करता हुआ चला आ रहा है।

रौनकी लोगों की इन बातों के पीछे छुपी भावनाओं को भली प्रकार समझता था और उसके स्वयं के दिल में भी कभी किसी की चिट्ठी न आने पर एक टीस सी उठती थी। जैसे वह चाहता हो कि सबकी चिट्ठियाँ रोज-रोज आएँ और किसी को कभी निराश न होना पड़े।

कल रौनकी ने मुझसे विलायत के लोगों की नई-नई बातें सुनाने का वायदा किया था। और उसने बताया था कि साधुसिंह नम्बरदार के बेटे जोगिन्दर सिंह ने वहाँ एक गोरी मेम से ब्याह कर लिया था। गाँव के सारे पत्र रौनकी स्वयं ही पढ़कर सुनाया करता था। यद्यपि बहुत से पढ़े-लिखे नौजवान सैना में भरती हो गए थे मगर फिर भी गाँव में कुछ पढ़े-लिखे लोग अब भी मौजूद थे पर उन्हें अपनी पढ़ाई का इतना घमंड था कि वे रोजे रोज पत्र पढ़कर सुनाना अपनी हेठी समझते थे। अतः यह काम रौनकी को ही करना पड़ता था। उसे पांच गांवों में डाक बांटने के लिए जाना पड़ता था और उन गांवों में भी ऐसा ही होता था। पत्रों की जो बात उसके दिल को छू जाती थी वह उसे पल्ले बाँध लेता और घर आ कर अपनी कापी में उतार लेता था। ऐसे उसके पास अनगिनत कहानियों का जखीरा जमा हो गया था। फिर वह एक एक करके मुझे सुनाया करता था। कल वह ऐसा ही वायदा करके

गया था और आज उसकी बाट देखते हुए मेरे पैर मुन्डेर पर टिकते ही न थे। नाइयों के घरों की तरफ़ के मोड़ पर नज़र गड़ाए मां ने जब मुझे देखा तो बोली—बेटा, मुन्डेर पर से ज़रा परे हटकर खड़ा हो, कहीं तू गिर न पड़े। रौनकी आता ही होगा। तुझे इतनी कड़ी धूप में भी चैन नहीं है लाल।

लेकिन आज घुंघरुओं की आवाज़ नहीं ही आई। धूप में खड़े होने के कारण मेरे शरीर से पसीना चू रहा था। सूर्य की गर्मी से आँखें जलने लगीं थीं। दिल में आशंका के कई भाव उमड़ने लगे थे और आँगन में खड़े जामुन के पेड़ पर बैठे पंछी गर्मी के प्रकोप से बचने के लिए पत्तों की ओट में सिमटे बैठे थे।

माँ कहीं किसी पड़ोस के घर में चली गई थी। गांव के बाहर रेत के टीलों पर से बगूले उमड़ने लगे थे और गर्म लू चलने से मेरा सिर चकरा गया था। लू का सनसनाता हुआ एक ऐसा तेज़ झोंका आया कि मैं अपने को वश में न रख सका और मेरे कदम लड़-खड़ा गये। दूसरे क्षण एक ज़ोरदार चीख़ सुन कर पड़ौसी भागे-भागे आये तो मैं अपने घर की दीवार के साथ बेहोश पड़ा था। यह बात सारे गाँव में फैलते देर नहीं लगी।

माँ ने उसी वक़्त मौजू चमार को माधुसिंह नम्बरदार की घोड़ी देकर रौनकी के गाँव कूम को उसका पता लगाने के लिए दौड़ाया। सुबह का गया दिन के तीसरे पहर मौजू जब अकेला लौट आया तो मां को कुछ खटक सा गया। मौजू पसीने में नहाया हुआ घोड़ी की काठी उतार रहा था कि सहसा माँ की ओर मुड़ा और बोला—

"रौनकी बीमार है, वह उधर से बेहोश पड़ा है। अगर वह थोड़ा सा भी होश में होता तो मैं उसे घोड़ी पर बैठा कर किसी तरह ले ही आता।"

उस समय मैं होश में था। मौजू की बात मेरे कानों में भी पड़ी और मैं पीड़ा से कराह उठा। चोट बायीं जांघ पर लगी थी और एक हड्डी चटख गई थी। माँ ने समझा कि मैंने मौजू की बात सुनी नहीं है। वह मेरे निकट आकर सान्त्वना के स्वर में बोली—

"रौनकी किसी सरकारी काम की वजह से रुक गया है। उसने मौजू से कहला भेजा है कि तू चल मैं तेरे पीछे आता हूँ।"

"कहीं वह बीमार न हो गया हो माँ" मेरी बात ने माँ को हतप्रभ सा कर दिया और वह बिना कुछ जवाब दिये घर के अन्दर घुस गई। उसके चेहरे से बेचैनी झलकती थी।

कस्बे के सरकारी डाक्टर को बुला कर माँ ने मेरी पट्टी करवाई थी और मेरी टाँग पलस्तर से जकड़ दी गई थी। डाक्टर के मुँह से यह हिदायत सुन कर कि मुझे महीना भर ऐसे बन्धे बन्धाए खाट पर लेटे रहना होगा तो मुझे रोना आ गया था। हो सकता है अब मुण्डेर पर खड़े होकर रौनकी के घुँघरुओं की आवाज़ को उत्सुकता से सुन सकने का फिर कभी मौका ही न आए। अगर मेरी टाँग बिलकुल साबित भी निकल आई तो भी माँ मुझे कभी कोठे की छत पर चढ़ने की आज्ञा नहीं देगी। और दूर नाइयों की गली का मोड़ पार करते ही मैं रौनकी को भला कैसे देखा करूँगा? फिर तो दूसरे लोगों की तरह अपने घर की दहलीज़ पर खड़ा रह कर ही उसका इन्तज़ार करना हुआ करेगा।

मैं कई दिन इन्हीं विचारों के जाल बुनता रहा और इस सम्बन्ध में जितना अधिक सोचता उतनी ही मेरी पीड़ा बढ़ती जाती। मन पर उदासी की एक छाया सी मँडराने लगती। पड़ा-पड़ा ऊब जाता तो माँ से बार-बार ज़िद करता कि रौनकी का कुछ तो पता चलाना चाहिए। कितने दिन होने को आए कि वह नहीं आया।

सातवें रोज़ सूर्य निकलने के साथ-साथ मौजू ने रौनकी को घोड़े की पीठ पर बैठा कर हमारे घर के आगे ला उतारा। जैसे ही वह घोड़े से उतरा तो घुँघरुओं की छन...छन... छन... ने मुझे चौंका दिया और हवा में झूलते पेड़ के पत्तों की सनसनाहट और घुँघरुओं की मिली-जुली आवाज़ से उदास आँगन में फिर से जीवन लौट आया। घुँघरुओं वाली लाठी की टेक लिए रौनकी दहलीज़ लाँघ कर अन्दर आ गया उसका चेहरा पीला पड़ गया था। उस पर उभर आई झुर्रियों ने उसे भद्दा बना दिया था।

माँ जल्दी से उसके लिए मूढ़ा ले आई और वह लाठी को मेरी खाट के सहारे टिका, स्वयं मूढ़े पर बैठ गया। चुपचाप-सा, निर्निमेष वह मेरी पलस्तर लगी टाँग को देखता रहा। उसके चेहरे से लगता था कि जैसे वह अपने हृदय की वेदना को छुपाने की कोशिश कर रहा हो। अस्फुट स्वर में वह बोला:

"मैंने तेरी खातिर डाकखाना से महीने भर की छुट्टी ले ली है और मैं तुझे इतनी कहानियाँ सुनाऊँगा कि तू ऊब उठेगा।"

कहानियों की बात से मेरा चेहरा खिल उठा। और मैं गत दिनों की सारी पीड़ा को भूल गया। सूर्य की हलकी सी किरनें आँगन की दीवार लांघ कर मेरे शरीर से स्पर्श कर रही थीं और मुझे एक असीम सुख का अनुभव होने लगा था।

जब भी मेरा मन कहानी सुनने को होता था तो रौनकी डाकखाने के एक और से खाली रही कागज जोड़कर बनाई अपनी कापी खोल कर बैठ जाता था। रात को वह टेढ़े-टेढ़े अक्षरों में लिख रखी अजीब-अजीब कहानियाँ कहता रहता था। ये पत्रों की छोटी बातों या घटनाओं को लेकर गढ़ी कहानियाँ रौनकी के रोम-रोम में रम गई थीं। इन्हीं कहानियों की बदौलत उसने न जाने कितनों के दिलों में झाँक कर देखा था। फिर अब वह झपकी लेने लगता तो माँ को उसे सो जाने का स्वयं कहना पड़ता था।

मेरी टाँग पलस्तर की कैद से मुक्त भी हो गई और रौनकी फिर ड्यूटी पर जाने लगा लेकिन कहानियाँ सुनने की भूख अब भी जैसे की तैसी थी।

आषाढ़ के आखिर में पानी के कुछ छींटे पड़े तो गर्मी से झुलसे जा रहे पशु पंछियों और आदमियों ने एक सुख की साँस ली लेकिन दिल खोल कर बादलों ने बरसना जाने क्यों ठीक नहीं समझा, बादलों के झुरमुट पूर्व दिशा से उमड़ कर आते थे लेकिन फिर कहीं गायब हो जाते थे। सबकी आँखें धुंधले मटमैले से आकाश की ओर टिकी रह जाती थीं। ढोर-डंगर कड़ाके की गर्मी से खेतों में काम करते करते हाँफ गये थे। किसानों की गर्मी से साँस फूलने लगी थी और वे प्रति दिन बादलों के घूमते टुकड़ों की ओर नजरें लगाये रहते कि कब कोई काली कजरारी बदली बरसती है।

एक सन्ध्या को जब आकाश को धूल ने ढक रखा था और हवा तेज़ होता चली जा रही थी तो रौनकी धीरे-धीरे लड़खड़ाता सा नाइयों की गली लाँघकर हमारे घर की ओर चला आ रहा था। उसका चेहरा स्याह पड़ गया था और वह बहुत निढाल दिखाई दे रहा था। उसके पास आज न तो डाक का थैला और न ही घुंघुरुओं वाली लाठी थी। आँगन में घुसते ही उसने मुझे अपनी बाँहों में कसकर प्यार किया और फिर उसकी नजरें मेरी माँ को ढूँढने लगीं। पश्चिमी कोने पर बंधी गाय रम्भाने और नाँद पर अपने सींग मारने लगी थी और उसका चित्तकबरा बछड़ा रौनकी को देखते ही उछल-कूद करने लग गया था। माँ किसी पड़ौसी के घर गई थी। मैं दौड़कर उसे बुला लाया। जब उसने भी रौनकी को शोकातुर दशा में पाया तो हक्की बक्की सी देखती खड़ी रह गई। कहीं फिर से बीमार तो नहीं हो गया वह जो ऐसे गुमसुम मुर्झाया सा पत्थर बना बैठा है।

लेकिन माँ के दिल का कौतूहल जल्दी दूर हो गया।

कूम की अंधी विधवा करतार कौर का जवान बेटा पूर्णसिंह बर्मा के मोर्चे पर मारा गया था। अभी वह कुछ दिन पहले छुट्टी आया था और करतार कौर ने उसकी लम्बी आयु माँगते हुए गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ रखवाया और सारे गाँव की रोटी की थी। छुट्टी खतम हो जाने पर जब वह वापस जाने लगा था तो करतार कौर ने अपनी पलकों के नीचे थिरक रहे आँसुओं को छुपाते हुए कहा था-वाह गुरू तेरी रक्षा करे। जब तू फिर लम्बी छुट्टी पर घर आयेगा तो मैं तेरा ब्याह रचा दूँगी और जुग-जुग जीए।

उस शाम आँधी आ जाने के कारण वैसे ही जल्दी अंधेरा फैल गया लेकिन कूम के पूर्ण सिंह की मौत की खबर ने वातावरण में और अधिक उदासीनता भर दी थी। रौनकी ने वह रात हमारे घर ही गुजारी। उस रात उसने कोई कहानी नहीं कही और चुपचाप खाट पर औंधे मुँह पड़ा रहा। वह अपने गाँव से इस लिए भाग आया था कि उससे करतार कौर का रोदन सुना नहीं गया था। सारा गाँव इस खबर को सुनकर सन्न रह गया था। गलियों के तिनके भी रो दिये थे। जिन सुहागनों के पति मोर्चे पर थे, वे इस खबर से काँप उठीं थीं। और वह गुरू से अपने प्रिय जनों की लम्बी आयु के लिए प्रार्थना करने लगी थीं।

फिर एक के बाद नित्त कोई नई खबर आने लगी जैसे लड़ाई ने अपना वास्तव रूप अब दिखाया हो। हमारे पड़ौसी मिलखा सिंह का बेटा भी युद्ध के मोर्चा पर काम आया। मौत से कुछ दिन पहले अपने घर पर जन्मे बेटे को अगली छुट्टी में जी भर कर देखने का

संकल्प मन ही में लेकर वह मर गया था। आस-पास के गाँवों से भी उड़ती उड़ती ऐसी खबरें आ रही थीं। हमारे गाँव की दूर दूर तक फैली रिश्तेदारियों से कोई न कोई मनहूस खबर सुनने को मिल जाती थी। खुले आँगनों में लोग ग़मगीन से इन्तज़ार में बैठे रहते थे कि जाने कब कोई रिश्तेदारी में से लोग आन जुटें। घर रुदन और सिसकियों में सुलगने लगे थे और बाहर खेत हल की नोक के छूने को बेताब थे। ढोर-डंगर भूखे और प्यास नाँद पर बन्धे रम्भाते थे। उन्हें चराने के लिए बाहर ले जाने वाला कोई नहीं था।

रौनकी अब खोया-खोया-सा और उदास रहने लगा था। पाचों गाँव उसे अब एक विकट घाटी दिखाई देने लगे थे। अब वह डाक स्वयं नहीं बाँटने जाता था अयोध्या पंडित की हट्टी पर बैठा लोगों को वहीं बुलाकर चिट्ठियों को दे देता था। खुले आगन उसे खाने को दौड़ते थे। पहले वह गाँव की गलियों में से होता हुआ आता था लेकिन अब चुपचाप पिछवाड़े की ओर से आ निकलता था। घुँघरुओं की आवाज़ तो क्या, उसके पैरों की भी आहट सुनाई नहीं पड़ती थी।

अगर कोई चिट्ठी खोलकर पढ़ने को उसकी तरफ़ बढ़ा देता तो वह अयोध्या पंडित की ओर इशारा करके चुपके से खिसकने की करता था। पहले इन चिट्ठियों में मनुष्य की उमंगों और भावनाओं को व्यक्त करने वाले सीधे-सादे शब्द उसके लिए आकर्षण का विषय थे लेकिन अब वही शब्द उसे खून के धब्बों से प्रतीत देते थे। वे धब्बे जाने कितनों के दिलों का दाग बन गए थे।

पहली बड़ी लड़ाई के वक़्त भी वह डाकिया था, तब वह लोगों के साथ अभी इतना घुला-मिला नहीं था लेकिन फिर भी उसके दिल पर लड़ाई गहरे घाव छोड़ गई थी। पिछले बरसों में चुके वे घाव अब फिर ताज़ा हो आए थे और नासूर बन कर रिसने लगे थे।

जो चालीस बरस में कभी अपने काम में थक-ताया नहीं था, वही आज अपने को पंगु समझने लग गया था। उसका चेहरा सिकुड़ कर सूखे चमड़े की तरह हो गया था। अब उस पर माँ की तमल्ली भी कोई असर नहीं करती थी। इस लड़ाई ने उसके अनगिनत घरों के साथ अटूट सम्बन्धों को छिन्न-भिन्न कर दिया था। उसने कभी अपने को अकेला महसूस नहीं किया था। लेकिन आज वह दीपक की बुझती लौ की तरह डोलने लग गया था।

एक सुबह जब रौनकी ने घुंघरुओं वाली लाठी के साथ हमारे गाँव में कदम रखा तो घरों के अन्दर बैठी औरतें छुप-छुप कर बाहर गली में झाँकने लगीं। बन्दे आज बहुत दिनों के बाद घुंघरुओं की आवाज़ सुनाई दी थी, लेकिन बन्द किवाड़ आज भी नहीं खुले। रौनकी का दिल चाहता था कि आज उसे घरों के बाहर आकर औरतें सिर्फ़ एक बार पुकारें और वह उनके बेटों व पतियों की लम्बी आयु की कामना करे लेकिन उसके दिल की यह साध दिल ही दिल में सुलगती रह गई। उसकी सद्भावनाओं को ठेस लगी। और उसका दुःख हलका होने के बजाय और भारी हो गया।

उसी दिन उस खबर ने सारे गाँव को चौंका दिया कि रौनकी डाकखाना की नौकरी छोड़कर नीलीबार जा रहा है, यहाँ उसके भाई बरसों से ठेके पर जमीन लेकर खेती-बारी करते हैं। उसकी पेन्शन होने में कुछ ही बरस बाकी रह गये थे लेकिन अब वह चिट्ठियाँ बाँटने का काम नहीं कर सकता था। उसने धीरज खो दिया था। युद्ध के भयंकर परिणामों ने उसे निराश बना दिया था। और वह दिल में जाने क्या क्या भाव छिपाये गाँव छोड़ने को मजबूर हो गया था।

वह हमसे विदा लेने आया था। उसके कंठ से कोई आवाज़ फूट नहीं रही थी और वह जामुन के पेड़ से सटकर खड़ा डबडबाई आँखों से मेरी ओर एकटक देखे जा रहा था। किसी के पास अपने हृदय के भाव प्रकट करने को शब्द नहीं रह गये थे। पेड़ के पत्तों की उदास सी छाया आँगन में मडरा रही थी। वह लाठी में बंधे घुंघरू खोलकर मेरी तरफ़ बढ़ा और रुंधे स्वर में बोल उठा।

यह घुंघरू अपनी गाय के चित्तकबरे बछड़े के गले में बांध देना और लड़ाई के खत्म होते ही मैं वापस लौट आऊँगा।

अब भी वह घुंघरू बछड़े के गले में बंधे हुए हैं। जब मैं उनकी आवाज़ सुनता हूँ तो मुझे रौनकी की याद आ जाती है। और यूँ लगता है कि जैसे वह अपनी ज़िन्दगी के सारे अरमान, सारी भावनाएँ, मुझे विरासत में दे गया हो।

१६, चर्चरोड, कशमीरी दरवाजा
दिल्ली-६

—प्रीतमसिंह "पंछी"

कला-चर्चा

हिमाचल-चित्रशैली का ध्रुव-विन्दु : सुन्दर नारी !

महामति डार्विन ने विश्व विख्यात ग्रन्थ 'The descent of man' में लिखा है कि ललित कला का आविर्भाव प्रेमानुभूति के लिए हुआ। प्रेमानुभूति सौन्दर्यावलोकन पर आधारित है। कला सौन्दर्य की जननी है। सौन्दर्यावलोकन करने का प्रत्येक जाति का अपना अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है। इसी दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि पर कला के विभिन्न रूपों की सृष्टि हुई।

मानव-मन की समस्त परिकल्पनाओं में रस आकलन सर्वोपरि है, किन्तु उसकी यह चिर-तृष्णा कभी शान्त नहीं हो सकी है। अतः वह प्रत्येक वस्तु को सुन्दर-से-सुन्दर बनाने के लिए सतत प्रयत्न कर रहा है; क्योंकि सौन्दर्यावलोकन से उसकी रस संचय की वाञ्छा को सान्त्वना मिलती है। यहाँ पर कुछ साहित्य-समीक्षकों को शंका हो सकती है कि सभी रसों की निष्पत्ति या प्रतिपत्ति के लिए सौन्दर्यावलोकन कैसे अपेक्षित है? वे उदाहरण स्वरूप 'बीभत्स' को रख सकते हैं और कह सकते हैं कि इसका स्थायिभाव तो 'जुगुप्सा' है जिसका सौन्दर्य से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु यह धारणा निर्मूल है। कलाकार की दृष्टि में तो सभी वस्तुएँ सुन्दर हैं क्योंकि वे उसकी सात्त्विक भावना में आच्छादित रहती हैं। साधारण मनुष्यों के लिए यह बात लागू हो सकती है।

अब प्रश्न उठता है : सौन्दर्य क्या है? महाकवि ख़लील जिब्रान ने सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि सौन्दर्य के लिए एक आकाश की भाषा है जो समस्त मानवीय संगीत को अपने में विलीन करके एक मूक अनुभूति में परिणत कर देती है, जैसे कि ख़ामोश समुद्र नदी नालों के गीतों को अपनी गहराइयों में लीन करके एक अनन्त ख़ामोशी में बदल देता है। सौन्दर्य एक रहस्य है; जिसको पा कर हमारी आत्मा ससीम से कूद कर असीम में विलीन हो जाती है। वास्तव में सौन्दर्य का विधान यथेच्छ कामोपभोग के लिए नहीं; किन्तु संयम के लिए किया गया है। अतः अमर कवि कालिदास ने इस रहस्य को इन शब्दों में अंकित कर दिया है : 'यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये, न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः' : हे पार्वति! यह मत सत्य है कि रूप की उपासना पाप के लिए नहीं किन्तु संयम के लिए है। ख़लील जिब्रान ने भी कहा था कि सच्चा सौन्दर्य वे किरणें हैं जो आत्मा के अत्यन्त पवित्र चश्मे से फूट कर शरीर को इस तरह आलोकित कर देती हैं जिस तरह बीज की गहराइयों से ज़िन्दगी फूटती है और वे फूल रङ्ग और रूप प्राप्त करते हैं। भारतीय कला के महान् पारखी डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "The dance of shiva" में यही भाव व्यक्त किए हैं। उन्होंने तो एक क़दम और आगे बढ़ कर घोषणा की है कि उस अथाह सौन्दर्य-राशि को केवल कलाकार ही छू सकता है, अतः प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का विश्लेषण कलात्मक दृष्टिकोण से करना चाहिए।

जब कलाकार लोकोत्तर सौन्दर्य राशि का छोर पकड़ लेता है तो उसकी दृष्टि स्वर्ग-लोक से भूलोक तक और भूलोक से स्वर्ग-लोक तक विचरती है।

The poet's eye in fine frenzy rolling,
Do the glance from heaven to earth and earth to heaven,—Shakespeare.

इसी सौन्दर्य-मद में झूम-झूम कर कलाकार अपनी कोमल-कान्त कृतियों का सृजन किया करता है। इन्हीं लोकोत्तर कृतियों द्वारा वह जगत् के दुःख-दैन्य-पूर्ण प्राङ्गण में अमृत वर्षा की कल्पना करता है।

"सुन्दरता का आलोक स्रोत है, फूट पड़ा मेरे मन में
जिससे नवजीवन का प्रभात होगा फिर जग के आँगन में"

—सुमित्रानन्दन पन्त

कलाकारों ने नैसर्गिक सौन्दर्य को व्यक्त करने के

लिए सुन्दर स्त्री को माध्यम बनाया है। कुछ कलाकारों ने प्राकृतिक सौन्दर्य को प्रकृति द्वारा भी व्यक्त किया है, जैसा कि शैव काव्यों से भासित होता है। किन्तु इनकी संख्या नगण्य ही है। हिमाचल चित्रशैली के कलाकारों ने भी अपनी कला का ध्रुव-बिन्दु सुन्दर स्त्री को चुना। स्त्री सौन्दर्य के चारों ओर इन चित्रों का जाल-सा बुना हुआ है। स्त्री-जीवन में केवल सुकुमारता के सिवाय और कुछ नहीं है। उसकी यह सुकुमारता पल-पल परिवर्तित हो कर जीवन को नित नवीन सन्देश देती है। हिमाचल चित्रशैली के चितेरों ने संयोग और वियोग, प्रेम और शृङ्गार की कोमल हरियाली पर स्त्री सौन्दर्य को ओस के कणों की तरह बखेर दिया है। इन कणों से फूटती हुई रजत किरणें हमें पवित्रता का अमर सन्देश दे रही हैं। जब ब्रिटिश म्यूज़ियम के चित्र-विभाग के अध्यक्ष विलियम लौरेन्स का परिचय 'हिमाचल चित्रशैली' से हुआ तो वह आश्चर्य-चकित रह गए। उन्होंने एक बिना रङ्ग के चित्र का उदाहरण देते हुए कहा है कि उस अनुपम चित्र को देख कर मेरा मन माया के मधुमय राज्य में विचरण करने लगा। इस चित्र में दिखलाया गया है: एक सरोवर का किनारा है; किनारे पर एक मण्डप है; सरोवर और मण्डप दोनों ही कला घर की ज्योत्स्ना से आलोकित हैं; प्रकृति निस्तब्ध पड़ी है। इसी मायामय वातावरण में दो प्रेमी मण्डप में बैठे हुए बड़े ही निस्वार्थ भावों से संगीत का रसास्वादन कर रहे हैं। लारेन्स महोदय ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि संसार की चित्रकला के इतिहास में मैंने ऐसे बहुत कम चित्र पाए हैं जो 'हिमाचल चित्र शैली' के उत्कृष्ट चित्रों के आगे टिकने में समर्थ हो सके हैं। तभी तो उन्होंने दुःख के साथ कहा था कि हम (पश्चिम देशवासी) अभागे हैं जो अभी तक भी इस मनोहारिणी कला का रसास्वादन न कर पाए।

इतिहास : वैसे तो 'हिमाचल-चित्रशैली' का सुप्रसिद्ध नाम 'कांगड़ा-चित्र कला' है। कुछ विद्वान् इसे 'हिमालय चित्र-कला' कहते हैं और कुछ 'पहाड़ी-चित्र-कला' के नाम से भी पुकारते हैं। मुझे श्री नान्हालाल मेहता द्वारा चुना हुआ नाम 'हिमाचल-चित्रशैली' बहुत पसन्द आया। अतः मैंने यहाँ पर इसे इसी नाम से व्यवहृत किया है। तब तक संसार इस चित्र शैली से बिलकुल अनभिज्ञ था जब तक कि डॉ० आनन्दकुमार स्वामी ने 'राजस्थानी-पेन्टिंग' नामक गवेषणापूर्ण ग्रन्थ सन् १९१६ में दो बड़ी बड़ी जिल्दों में नहीं लिखा था। उन्होंने इसी ग्रन्थ के अन्तर्गत 'हिमाचल चित्रशैली' का सचित्र रसात्मक वर्णन किया है। कला-समीक्षकों ने 'हिमाचल-चित्रशैली' को 'राजस्थानी-चित्रकला' के अन्तर्गत ही माना है। डा० आनन्दकुमार स्वामी ने 'राजस्थानी-चित्रकला' का वर्णन करते हुए 'हिमाचल चित्र-शैली' से ही अधिक उदाहरण चुने हैं। अतः हमें 'राजस्थानी चित्र-कला' पर भी विहंगम दृष्टि डाल लेनी चाहिए।

राजस्थानी-चित्रकला : राजपूत-चित्रकला के आविर्भाव का ठीक ठीक समय निर्धारित करना कठिन कार्य है। इस काल के चित्रकारों ने नाम और संवत् देने का लोभ ही नहीं किया। नाम लिखने की प्रथा तो अकबर के समय से चली। फिर भी विद्वानों ने बहुत परिश्रम और खोज के पश्चात् 'राजपूत चित्रकला' का प्रादुर्भाव सन् १५०० और १६०० के मध्य में माना है। सन् १६०० के पूर्व के चित्र तो नगण्य ही हैं। इन चित्रों पर पूर्ण रूप से फ़ारसी-चित्र कला का प्रभाव है। १६ वीं सदी के राग-रागनियों से सम्बन्धित चित्र अपना महत्त्व रखते हैं। १६ वीं सदी महाकाव्यों के चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। पारिवारिक और शुद्ध बलात्मक चित्रों की भी भरमार है। पश्चिमी हिमालय के चित्रों में नाटकीय गुण भी पाया जाता है। गुजराती चित्र-कला का प्रभाव कई अंशों में पाया जाता है। १८ वीं सदी के पूर्वार्द्ध में 'मुग़ल-चित्र शैली' ने 'राजस्थानी चित्र-कला' पर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया था। यह ही 'राजस्थानी-चित्रकला' का संक्षिप्त परिचय है।

हिमाचल की चित्र शैली : यह हम पहले बता चुके हैं कि 'हिमाचल चित्रशैली' राजस्थानी चित्रकला का ही एक विभाग है, १७ वीं, १८ वीं और १९ वीं सदी की 'हिमाचल-चित्र-शैली, अपना विशेष महत्व रखती है। इस काल को 'हिमाचल चित्रशैली' का 'स्वर्णयुग' भी कह सकते हैं। केवल १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में ही लगभग पचास हज़ार चित्रों की सृष्टि हुई। राजा संसारचन्द (सन् १७७५-१८२३) ने तो इस शैली के उत्थान के लिए जीवन भर ही प्रयत्न किए। दूसरी रियासतों के राजाओं को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। बहुत से कला-वस्तु संग्रहालयों

में समारचन्द के पोर्ट्रेट्स देखने को मिलते हैं। राजा साहब के समय में कितने ही महाकाव्यों का चित्रण किया गया। महाभारत और कृष्णलीला सम्बन्धी चित्रों का सौन्दर्य तो देखते ही बनता है। इन चित्रों में रेखा और रंगों का अपूर्व समन्वय है। नाटकीय गुण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। १७ वीं शताब्दी की अपेक्षा १८ वीं शताब्दी में महाकाव्यों का अधिक चित्रण हुआ। १८ वीं सदी के चितेरों ने सुन्दर नारी को लक्ष्य बना कर भारतीय जीवन की समस्त गुत्थियों को सुलझा दिया है। 'हिमाचल-चित्र शैली' के चित्रों को सामान्यतः छः विभागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) धार्मिक (२) ऐतिहासिक (३) दरबारी (४) पारिवारिक (५) लोकगाथा सम्बन्धी (६) शुद्ध कलात्मक।

(१) **धार्मिक :** देवी-देवताओं, पौराणिक गाथाओं और धार्मिक काव्यों की धरती पर ही धार्मिक चित्रों का निर्माण हुआ। ऋषि-मुनियों, महापुरुषों और गुणावतारों को लेकर भी अनेक चित्रों की सृष्टि हुई। कलाकारों ने धार्मिक चित्रों के चरित्र-चित्रण में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री को अधिक महत्व दिया है। उदाहरणस्वरूप हम (Museum of Fine Arts, Boston) में एक चित्र १८ वीं शताब्दी से लेते हैं। इसमें दिखाया गया है कि पार्वती की नारी सुलभ भावनाओं व शिव-शक्तियों को किस प्रकार पूर्णता मिली। कृष्ण-लीला के तो लगभग समस्त चित्र ही इस तथ्य का उद्घाटन करते हैं।

(२) **ऐतिहासिक :** ऐतिहासिक चित्रों का निर्माण सामाजिक गतिविधियों और रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों के आधार पर हुआ। इन चित्रों का केन्द्रबिन्दु भी सुन्दर नारी है। ऐतिहासिक चित्रों में सब से बड़ी विशेषताएँ पाई जाती है—(१) नल दमयन्ती सम्बन्धी रेखा चित्र (२) पुरुष के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करती हुई नारी का रौद्ररूप रेखा-चित्रों का उद्घाटन डा० आनन्दकुमार स्वामी ने किया था। दमयन्ती स्वयंवर का चित्र बड़ा भव्य और दर्शनीय है। यद्यपि चित्रकार ने गाढ़े लाल रंग की धरती पर अन्य रंगों को फीका कर दिया है तथापि यह कमी चित्र की भव्यता को छू तक नहीं गई है। यहाँ पर डा० कुमार स्वामी के यह वाक्य सार्थक हो जाते हैं कि हमें कला की विशेषताओं पर ध्यान न देकर यह देखना चाहिए कि कलाकार अपने उद्देश्य में सफल हो सका है या नहीं—'The Dance of Shiva।' दूसरी विशेषता यह है कि नारी केवल प्रेममयी ही नहीं है; वह अत्याचारों के विरुद्ध रुद्र रूप भी धारण करती है। इस का वास्तविक चित्रण हमें 'चान्दबीबी' के चित्र में मिलता है। यह चित्र १८ वी सदी का है और Lady Herringham के संग्रहालय में संगृहीत है।

(३) **दरबारी :** इन चित्रों में मुग़लों और राजपूतों के विलासी तथा वीरतापूर्ण जीवन की झाँकी है। कहीं पर आखेट है; तो कहीं, औज की सजावट। कहीं पर शूर पगड़ी बांध रहा है तो कहीं पर तलवार चला रहा है। वेश्याओं और भाँडो की तो लीला ही न्यारी है। सुन्दर रमणी के लिए बात-बात पर म्यान से तलवारें निकल रही है।

(४) **पारिवारिक :** पारिवारिक चित्रों द्वारा गृहस्थ जीवन का का पवित्र सूत्र सकलित किया गया है। चरखा कातती हुई स्त्रियाँ, वाटिका विहार करती हुई नारियाँ, हिन्डोले में झूलती हुई नवयुवतियाँ, पर्व, त्यौहार, स्नान, विश्राम, शृङ्गार इत्यादि। लाहौर म्यूजियम में १८ वी सदी का एक पारिवारिक चित्र है। इस चित्र में दिखाया गया है कि राधा जी रसोई गृह में भोजन बनाने में एकाग्र चित्त हैं। खिड़की पर एक प्रेमोन्मत्त कबूतर का जोड़ा किलोलें कर रहा है। कृष्ण जी इस जोड़े को देखते हैं और लुक-छिपकर राधा जी की ओर कंकर फेंकते हैं, ताकि राधा जी पीछे फिर कर इस जोड़े को देख लें।

(५) **लोकगाथा सम्बन्धी :** शीरीं फ़रहाद, विक्रम-वैताल-चरित्र, सोनी महीवाल, यूसुफ़ जुलेखा, हम्मीर-हठ, वामक उजरा, माधवानल कामकन्दला इत्यादि लोक-गाथाओं के कई चित्र-संग्रह मिले हैं। ये सब प्रेम कथाएँ हैं।

(६) **शुद्ध कलात्मक :** शुद्ध कलात्मक चित्रों का आधार सामान्यतः सङ्गीत, नृत्य, विहार और कृष्ण-लीला है। असावरी रागिनी द्वारा जंगल में सर्पों को वश में करती हुई नारी, टोड़ी रागिनी द्वारा हरिणों को लुभाती हुई नवयुवती इत्यादि के चित्र दर्शनीय हैं। वैसे तो दरबारों में नृत्य-गान करती हुई नर्तकियों के चित्र भी सुन्दर हैं; किन्तु उनमें कला की उत्कृष्टता

नहीं है। 'हिमाचल—चित्र शैली' के चित्रकारों ने 'राजपूत—चित्रकला' की अपेक्षा राग माला और बारह—मासा सम्बन्धी चित्रों का कम संख्या में निर्माण किया, परन्तु कला की दृष्टि से उनमें उत्कृष्टता अधिक है। १८ वीं सदी के कृष्णलीला के चित्र तो अपनी अनुपमता के लिए प्रसिद्ध ही हैं। इन चित्रों में मुरली लीला, माखनलीला, दर्पण-दर्शन, दावानल-पान इत्यादि उल्लेखनीय है। मुरली-लीला पर तो न जाने कितने चित्रों का नाटकीय ढंङ्ग से निर्माण हुआ। राधा-कृष्ण के 'वर्षा-विहार' वाले चित्र (१८ वीं श.) के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। चारों ओर सावन की हरियाली छाई हुई है; मोर नाच रहे हैं; धीरे-धीरे बूँदें पड़ रही हैं; राधा-कृष्ण गलबहियाँ डाले एक कमरी के नीचे खड़े हैं; कृष्ण जी मोर की ओर अंगुली उठा कर राधा जी को बता रहे हैं और जंगल में हरिणी से प्रेम करती हुई राजकुमारी का चित्र भी भुलाया नहीं जा सकता। वन-विहार, ताम्बूल-वितरण, नौका-विहार हिण्डोले में झूलने इत्यादि के चित्र भी बहुत आकर्षक हैं। नायक-नायिका भेद के विषय में तो कहनाही क्या?

'हिमाचल-चित्र शैली' की अजस्र-धारा १८ वीं श. तक बहती रही। इसके पश्चात् उसमें शिथिलता आ गई और वह १९ वीं सदी के मध्य में गढ़वाल में आ कर लुप्त हो गई।

१९ वीं सदी में मानक, भोलाराम, ज्वालाराम चतू और मनक ने बड़े-बड़े भव्य चित्रों का सृजन किया। जिनमें प्रतीक्षा में बैठी हुई प्रेमिका शुक-क्रीड़ा करती हुई नव-यौवना, अंगूठी देखती हुई नव-विवाहिता इत्यादि के चित्रों ने अपने देश की कलात्मक परम्परा को साकार कर दिया। धार्मिक और महाकाव्यों के चित्रों के भी ज्वलन्त उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं।

हिमाचल प्रदेश की चित्रकला में १९ वीं सदी में एक नवीन धारा का प्रवेश हुआ। वह धारा है: विदेशियों का चित्रण। विदेशी कौन? वह ही गौराङ्ग महाप्रभु जिन्हें उत्तर प्रदेश के ग्रामीण 'फिरंगी' कहा करते हैं। फिरंगियोंने हिमाचल प्रदेश में लगभग सन् १८१२ में प्रवेश किया। इस प्रदेश के भारतीय उन्हें किस दृष्टि से देखते थे? इसी आधार पर इन चित्रों का आविर्भाव हुआ है। ये चित्र कला की दृष्टि से तो निम्न कोटि के ही हैं किन्तु इनसे फिरंगिओं की प्रारंभिक कार्य प्रणाली पर काफी मात्रा में प्रकाश पड़ता है। इनका भी अपना महत्त्व है। इन चित्रों की ओर १८४८ ई० से पहले किसी का ध्यान ही नहीं गया। श्री रामेश वेदी ने सन् १९४८ की सर्दियों में इन चित्रों के उद्धार की आवाज उठाई। सर्व प्रथम गुरुकुल विश्वविद्यालय का ध्यान इस ओर गया। फिर भारतीय पुरातत्त्व-विभाग ने कई विशेषज्ञ भेजे। इन्हीं प्रयत्नों से यह चित्र कुछ प्रकाश में आ सके हैं।

हिमाचल-चित्रशैली का क्षेत्र: हिमाचल-चित्र शैली का क्षेत्र पठानकोट से कुल्लू और जम्मू से टिहरी तक विस्तृत था। इस प्रदेश का इतिहास काफ़ी पुराना है। यह रावी, सतलुज और व्यास का क्रीडास्थल होने के कारण 'त्रिगर्त' के नाम से भी विख्यात था। यह प्रदेश प्रकृति की सुरम्य-स्थली है।

यहाँ पर हमने हिमाचल-चित्र-शैली का संक्षिप्त ऐतिहासिक विश्लेषण किया है। इस विवेचन द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं—हिमाचल चित्र-शैली का ध्रुव-बिन्दु सुन्दर नारी है।

हिमाचल चित्र-शैली का ध्रुव-बिन्दु नारी क्यों? इस प्रश्न का एक मात्र उत्तर यही है कि इस शैली के चित्रकार पुरुष ही थे। सुन्दर स्त्री की ओर पुरुष का आकर्षण स्वाभाविक ही है। यह एक प्राकृतिक रहस्य है, जिसको कलाकार अपनी कृतियों द्वारा व्यक्त किया करता है। दूसरे कला का सिद्धान्त है कि किसी भी वस्तु की उत्कृष्टता सिद्ध करने के उस वस्तु के सदृश किसी अन्य वस्तु का माध्यम चुन लेना अत्यावश्यक है। कला की चरम सीमा प्रकृति में है। मानव प्रकृति पुत्र है। कलाकार इसी लिए जीवन-दायिनी प्रकृति को प्रेम और त्याग की साक्षात प्रतिमा के रूप में देखता है। स्त्री भी प्रेम और त्याग की सजीव प्रतिमा है। अतः कलाकार ने अनन्त प्रकृति को अपनी जीवन-साथिनी स्त्री के द्वारा व्यक्त करने के प्रयत्न किए हैं।

—रामगोपालाचार्य

(२)

ग्रीस के कलाकारों ने बाह्य आकृति की पूर्णता की ओर इतना अधिक ध्यान दिया जितना कि न उससे पूर्व दिया गया था और न उसके पश्चात् दिया गया है परन्तु उनकी कला में मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है।

श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू : चित्रकार

(१)

उस दिन एक मित्र महोदय से बैठे-बैठे बातचीत हो रही थी। वे लोक-सभा के सदस्य रह चुके थे और लोक-सभा के अपने अनुभवों को सुना रहे थे। अपने अनुभवों को सुनाते हुए उन्होंने कहा : "आप लोगों को संभवतः यह ज्ञात नहीं होगा कि श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू चित्रकार भी हैं। लोक-सभा में व्याख्यान होते रहते हैं; उन में से कई व्याख्यान तो दिलचस्प होते हैं और कई व्याख्यान बहुत थकाने वाले होते हैं-ऐसे व्याख्यानों के समय लोक-सभा के कई सदस्य तो बाहर उठकर चले जाते हैं; कई तो आपस में बातचीत करना प्रारंभ कर देते हैं और कई सदस्य ऊँघने भी लग जाते हैं। ऐसा समय बड़ा कठिन होता है, क्योंकि समय का काटना कठिन है। संसार में जितनी कठिनाइयाँ हैं उनमें संभवतः सब से बड़ी कठिनाई समय का काटना ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे समय काटने के लिए मनुष्य ने ताश, शतरंज और इसी प्रकार की अनेक खेलों का आविष्कार किया है, उसी प्रकार बहुत सी ऐसी कलाओं का आविष्कार भी, जो कि मनुष्य के हृदय का मनोरंजन करती हैं और साथ ही जिनमें समय अत्यन्त सुगमता से व्यतीत हो जाता है, समय न काट सकने की अवस्था में ही हुआ है। कुछ भी, हो हम प्रायः देखते थे कि हमारे प्रधान मंत्री ऐसे समयों में एक कागज़ लेकर उस पर पेन्सिल से Sketches आकृति-चित्र बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। उन्होंने इस प्रकार के कई आकृति-चित्र बनाए हैं जो कि हमें देखने को मिले हैं और जिनसे कि यह ज्ञात होता है कि हमारे प्रधान मंत्री को न केवल चित्र-कला में विशेष रूप से दिलचस्पी है अपितु वे स्वयं एक अच्छे रेखाकृतिकार हैं वे शायद अपने इन आकृति-चित्रों को स्वयं कुछ विशेष महत्त्व प्रदान नहीं करते और इसीलिए लोक-सभा के अधिवेशन की समाप्ति के पश्चात वे उन्हें वहीं छोड़कर चले जाते हैं। अच्छा हो यदि कोई महोदय इन चित्रों का संग्रह कर लें और उन्हें सर्वसाधारण के सम्मुख रखने का प्रयत्न करें जिससे कि प्रधान-मंत्री के अंगुलियों की यह कला सुरक्षित रखी जा सके और उन चित्रों से प्रधान मंत्री जी के हस्त-कुशलता का अध्ययन किया जा सके।"

उनका यह निर्देश हमें बहुत पसंद आया और इसी कारण से 'अजन्ता' के लिए इस पत्र को लिख रही हूँ। 'अजन्ता' पत्रिका की कला के विषय में विशेष दिलचस्पी है और इसीलिए उसने अपनी पत्रिका में कला चर्चा का स्तम्भ भी खोल रखा है। अच्छा तो यह हो कि आप इन आकृति-चित्रों को किसी प्रकार उपलब्ध कर प्रकाशित करने का प्रयत्न करें।

कलावान् एकमात्र वे ही व्यक्ति नहीं होते जो कि कला में एक पेशा या Profession की तरह ही दिलचस्पी लेते हैं। कई बार ऐसा होता है कि अवस्थाओं से बाधित होकर भी एक व्यक्ति कला की शरण में जाता है और वह ऐसी रचनाओं को बनाने में सफल होता है जो कि कला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होती हैं। इस प्रकार की रचनाओं का अपना ही एक मूल्य होता हैं और कुछ नहीं तो इससे एक महान् व्यक्ति के व्यक्तित्व को अध्ययन करने की एक और सामग्री प्राप्त होती है।

कोई भी महापुरुष इस प्रकार का नहीं होता जिसका कि व्यक्तित्व बहुमुखी (Manysided) नहीं होता और कुछ नहीं तो महापुरुषों की अपनी Hobbies हौबी ही होती हैं। कहते हैं कि खाली समय में जनरल वाशिंगटन जूते सिया करते थे। महात्मा गान्धी जी को उन्होंने अपने हाथ का बनाया हुआ जूता भेंट में दिया था। गान्धी जी की तो इस प्रकार की कई हौबियां थीं। श्रीयुत विन्स्टन चर्चिल इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्रित्व के कार्य और और अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी समय मिलते ही चित्र बनाया करते थे और उनके चित्रों को जिन्होंने देखा है वे जानते हैं कि विन्स्टन

चर्चिल जहाँ एक बड़े राजनीतिज्ञ, स्टेट्समैन, वक्ता, साहित्यकार और लेखक हैं वहाँ एक कुशल चित्रकार भी हैं। हो सकता है कि चित्रकला में निष्णात आलोचक इन चित्रों को कला की दृष्टि से स्थायी महत्व न प्रदान करें जितना कि वे एक महान चित्रकार की रचनाओं को प्राप्त होता है परन्तु इन चित्रों को मुख्यतया इसीलिए महत्व प्राप्त होगा क्योंकि वे चित्र श्रीयुत विन्स्टन चर्चिल के हाथ के बनाए हुए हैं। इसी प्रकार अमेरीका के वर्तमान प्रेज़ीडेण्ट श्रीयुत आइज़नहोवर के संबन्ध में भी कहा जाता है। कहते हैं कि वे भी अपने खाली समय में चित्र बनाया करते हैं। इसी प्रकार कई अन्य महापुरुषों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है।

गुरुदेव श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि लिखते हुए जब वे कहीं काट देते थे तो उन्हें यह काटा हुआ स्थल सुन्दर नहीं प्रतीत होता था और इसी को सुन्दर बनाने के लिए वहाँ इस प्रकार की आकृति या चित्र बना देते थे जिससे कि यह ज्ञात न हो कि वहाँ कुछ काटा गया है। वे उस स्थान पर विशेष प्रकार की आकृति या चित्र बना देते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे उन्होंने चित्र बनाने प्रारम्भ कर दिए और आज जहाँ वे एक महाकवि, नाटककार, उपन्यासकार और अन्य प्रकार के सफल साहित्यकार हैं वहाँ एक महान् चित्रकार भी हैं। उनकी चित्र-रचना के सम्बन्ध में अनेक प्रदर्शिनियों का आयोजन किया जाता है। यह सम्भव है कि उनके इन चित्रों को उनकी कविताओं और अन्य महान् रचनाओं के समान स्थायी महत्व न प्राप्त हो और वे इतने महान् चित्रकार न हों जितने कि वे एक महान् कवि हैं तो भी इन चित्रों में भी महानता है क्योंकि इस पर उनके व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है।

इसी प्रकार लोक-सभा में बैठे हुए हमारे प्रधान मंत्री जिन चित्रों को बनाते हैं यह हो सकता है कि वह उनकी अंगुलियों का एक खेल मात्र ही हो तो भी उनका अपना ही एक विशेष महत्व है क्योंकि हो सकता है कि उनमें से एकाध कोई ऐसा भी आकृति-चित्र हो जिससे, उनके व्यक्तित्व का अध्ययन किया जा सके। किसी भी प्रतिभाशाली व्यक्ति की बहुमुखी प्रतिभा को अध्ययन करने के लिए जितनी भी अधिक सामग्री प्राप्त हो सके उसे उपलब्ध करने का पूर्ण रूप से प्रयत्न किया जाना चाहिए। आशा है कि प्रधानमंत्री के द्वारा निर्मित इस प्रकार के आकृति-चित्रों का संग्रह करने की ओर ध्यान दिया जाएगा। इस संबन्ध में यदि किसी अन्य व्यक्ति को कुछ और जानकारी हो तो वे हमें सूचना देने की कृपा करेंगे।

द्वारा/सम्पादक 'अजन्ता'
हि. प्र. सभा, हैदराबाद —ललिता देवी

पुस्तकों का अध्ययन
(२)

हमारे देश में पुस्तकों की लोक-प्रियता को किस प्रकार बढ़ाया जाय यह एक साधारण प्रश्न नहीं है। इस समय हमारी भाषाओं में उत्तम प्रकाशन तो हो रहे हैं परन्तु पुस्तकों की बिक्री उस रफ़्तार से नहीं हो रही जैसी कि वह अन्य देशों में है। इसका एक कारण तो यह है कि हमारे देश की अधिकांश जनता अभी तक अशिक्षित है दूसरा शिक्षित जनता भी इस प्रकार की है जो अभी तक अपने देशीय भाषाओं के साहित्य में विशेष दिलचस्पी नहीं लेती। इसका परिणाम यह होता है कि हमारी भाषाओं का साहित्य जिस प्रकार लोकप्रिय होना चाहिए-वैसा वह हो नहीं पाता। इसके लिए यह कहना ठीक नहीं है कि हमारे देश में इस प्रकार के लेखक ही नहीं है जो जनता और शिक्षित लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकें है। अभी तक हमारी शिक्षित जनता शिक्षा के लिए अपने देश की ओर विशेष रूप से दृष्टिपात नहीं करती। यही कारण है कि अच्छी पुस्तकें पड़ी रह जाती हैं। हमारे देश में ज्ञान और पुस्तकें अधिकतर विदेशों से आते है हमारे देश में उन्हीं पुस्तकों की खपत सुगमता से होती है जो कि पाठ्य क्रम में लग जाती हैं और या फिर सरकार के द्वारा पुस्तकालयों आदि के लिए खरीद ली जाती हैं। सर्व-साधारण जनता में पुस्तकों के पठन पाठन को लोकप्रिय बनाने के प्रयत्न करने पड़ेंगे। हमारे देशके विद्यार्थियों में और सर्व-साधारण में यदि सबसे कम किसी वस्तु से प्रेम है तो पुस्तकों से। यह सत्य है कि पहले से स्थिति में कुछ सुधार हुआ है परन्तु अभी यह सुधार अत्यन्त साधारण है। हमें इस बात का अध्ययन करना चाहिए कि अन्य शिक्षित देशों में पुस्तकों की खरीदी और अध्ययनको किस प्रकार व्यापक रूप दिया गया है कि जिससे पुस्तक-प्रकाशन का उद्योग (Industry), भी एक महान् उद्योग बन गया है।

आगरा — चित्तरंजन शर्मा

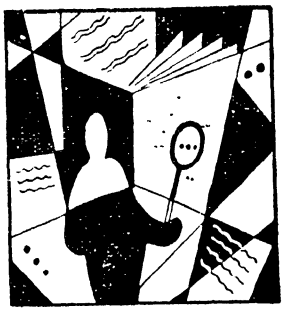

तीर-क्षीर..

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम भेजी जानी चाहिए।]

भगवद्गीता की बुद्धिवादी समीक्षा
लेखक : श्रीयुत भदन्त आनन्द कौसल्यायन
प्रकाशक : हंस प्रकाशन,
इलाहाबाद
मूल्य : ५.००

लेखक ने इस ग्रन्थ की रचना किस लिए की है इसके सम्बन्ध में उन्होंने श्रीयुत शान्तिदेव का एक श्लोक लिखा है जिसके तात्पर्य के द्वारा संभवतः उन्होंने अपने मन के आशय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है : "इस कृति में कुछ विशेष नहीं है। मुझ में ग्रन्थ-रचना का कौशल नहीं है। मैं परार्थ चिन्ता की भी बात नहीं कर सकता। अपने मन-तुष्टि के लिए ही मैंने इस ग्रन्थ की रचना की है।" यदि "मन-तुष्टि" (?) शब्द की व्याख्या और समीक्षा (?) की जाए तो यह सचमुच आश्चर्य होता है कि क्या इस प्रकार की ग्रन्थ रचना से किसी की "मन-तुष्टि" हो सकती है! "भगवद्गीता" की न तो यह "समीक्षा" ही है और न ही इस 'समीक्षा' को किसी भी प्रकार "बुद्धिवादी" कहा जा सकता है। लेखक की "मन-तुष्टि" इस बात से प्रतीत होती है कि वह "भगवद्गीता" के विषय में किसी प्रकार ऐसी धारणाओं को उत्पन्न कर सके जिससे उसके प्रति विद्वानों और सर्वसाधारण की श्रद्धा और आस्था समूल नष्ट हो जाए। अपनी "मन-तुष्टि" के लिए लेखक ने जिस "समीक्षा" की पद्धति को अपनाया है, यदि उसी प्रकार की समीक्षा-पद्धति से विश्व के महान् ग्रन्थों की 'समीक्षा' की जाए तो संभवतः "महानता" नाम की कोई वस्तु ही नहीं रह जाएगी। यदि चन्द्र, सूर्य और विश्व की समस्त स्वीकृत महान् वस्तुओं के प्रति प्रश्न-चिन्ह लगाकर इसी प्रकार की "बुद्धिवादी समीक्षा" के द्वारा यह सिद्ध कर दिया जाए कि वे एक ऊटपटांग और व्यर्थ वस्तुएँ हैं तो भी उनकी महानता और आकर्षण में रत्ती भर भी फ़र्क नहीं पड़ेगा। लेखक एक ओर "भगवद्गीता" के सम्बन्ध में यह कहते हैं : "यदि कभी वेदादि हिन्दू धर्म का समस्त वाङ्मय नष्ट हो जाए और अकेली 'भगवद्गीता' ही शेष रह जाए तो एक अकेली 'भगवद्गीता' ही बुद्धोत्तर-कालीन हिन्दू धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक आधार का काम दे सकती है और दूसरी ओर वे लिखते हैं :" यदि किसी को यह प्रयोग अप्रिय न लगे तो यह ग्रंथ पूरा "भानमती का पिटारा" है। संभवतः लेखक "बुद्धोत्तर कालीन हिन्दू धर्म" को ही "भानमती का पिटारा" समझते हैं और फिर वे "आचार्य शान्तिदेव" और शान्ति के उपासक होने पर भी "नाश" के विषय में क्यों सोचते हैं? उन्हें सम्भवतः यह पता नहीं कि वेद और 'श्रीमद्भगवद्गीता' आदि पुस्तकों का विनाश हो ही नहीं सकता। संसार के समस्त साहित्य में इस प्रकार की पुस्तकें कितनी लिखी गई हैं! लेखक को यह मालूम होना चाहिए कि इस प्रकार की पुस्तकों का पठन-पाठन या 'अभ्यास' का आधार एकमात्र विश्वास और अन्ध-श्रद्धा नहीं है। उनका आन्तरिक महत्व इतना अधिक और महान् है कि वह किसी भी प्रकार और किसी भी अवस्था में कम नहीं हो सकता। इन पुस्तकों में इतना अक्षय जीवन है जो कि कभी समाप्त ही नहीं हो सकता।

लेखक अपनी 'मन-तुष्टि' के लिए जो कुछ भी चाहें और जितना चाहें लिख सकते हैं क्योंकि उनके पास कागज है; कलम है; पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक हैं और उन्हें अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतंत्रता है—परन्तु वे दूसरों के सम्बन्ध में यह किस प्रकार लिख सकते हैं : "जिस 'गीता के ज्ञान' ने...उस अर्जुन को भी जिसे सम्बोधित करके ही सारी गीता गाई गई है नरक में पड़ने से नहीं बचाया तो वह और किसी के

लिए भी क्या कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है ?" उन्हें दूसरों के सम्बन्ध में इस प्रकार सोचने और प्रश्न करने की क्या आवश्यकता है ? वे 'गीता' के प्रथम श्लोक की समीक्षा में लिखते हैं: .."अनेक अन्य प्राचीन ग्रन्थों की तरह 'गीता' भी या तो एक सुन्दर धार्मिक उपन्यास है या एक सुन्दर एकांकी नाटक।" यही आश्चर्य होता है कि उन्होंने इसे "सुन्दर" किस प्रकार कह दिया है ?

लेखक ने "बड़ा संस्कृतज्ञ" "शास्त्रज्ञ" न होने पर और एक "सामान्य अल्पज्ञ" होने पर भी "आधुनिक विवेचनात्मक दृष्टिकोण" (?) से "भगवद्-गीता" की "समीक्षा" की है। उनका दृष्टिकोण न तो "आधुनिक है और न विवेचनात्मक" और क्या छोटे-छोटे प्रश्नों के रूप में किसी प्रकार का रिमार्क करने या वाद-विवाद उठाने के प्रयत्न को "समीक्षा" कहा जा सकता है ?

लेखक अपने निवेदन में लिखते हैं : "असम्भव नहीं कि हमारे कुछ भगवद्गीता अभ्यासी मित्र इस "समीक्षा" की भी "समीक्षा" करें। इस "बुद्धिवादी" आधुनिक विवेचनात्मक दृष्टि कोण" की "समीक्षा" (?) की 'समीक्षा' करने का प्रयास इस पुस्तक के लेखक जैसा ही कोई "बुद्धिवादी" और "आधुनिक विवेचनात्मक दृष्टि कोण" का "अभ्यासी" व्यक्ति ही कर सकता है !

"जो कह झूठ, मसखरी जाना,
कलियुग सोइ गुनवन्त बखाना"

मानस की (रूसी) भूमिका

लेखक : प्रो० वरान्नीकोव
अनु : केसरीनारायण शुक्ल
प्रकाशक : विद्या-मन्दिर, रानीकटरा, लखनऊ
मूल्य : ३·५०

प्रस्तुत पुस्तक "मानस की रूसी भूमिका", की भूमिका अनुवादक महोदय ने ८३ पृष्ठों में लिखी है जो कि छोटे टाइप में छापी गई है और "रूसी भूमिका" पुस्तक १६१ पृष्ठों की है जो कि कुछ बड़े टाइप में छापी गई है। अनुवादक ने अपनी भूमिका में प्रो० वरान्नीकोव का परिचय दिया है और लिखा है : "वरान्नीकोव की ख्याति का प्रधान आधार तुलसीदास कृत रामचरित-मानस का रूसी पद्यात्मक अनुवाद है। यह अनुवाद द्वितीय महायुद्ध के उन वर्षों में सम्पादित किया गया था जब कि फ़ासिस्त जर्मन ने रूस पर आक्रमण कर दिया था। प्रो० वरान्नीकोव ने शरणार्थी के रूप में कज़ाकिस्तान में जा कर इसे पूरा किया।" प्रो० वरान्नीकोव के इन निबन्धों में उनका पाँचवां निबन्ध हमें कुछ विचित्र-सा प्रतीत हुआ। इस निबन्ध में उन्होंने भारतीय और रूसी पेड़-पौधे, पशु और जंगली जानवर और पक्षियों आदि की पारस्परिक तुलना की है। वे गाय के सम्बन्ध में लिखते हैं : "रूसी साहित्य में गाय बहुत कम काव्यात्मक मानी जाती है और किसी लड़की या स्त्री के लिए यह कहना कि वह गाय के समान है—प्रशंसनीय नहीं समझा जाता। भारतीय काव्य में पूर्णतया भिन्न स्थिति है। यहां यह अत्यन्त अच्छे स्वभाव की, कोमल, शुभ और स्वच्छ पशु मानी जाती है।.....कुत्ता जो कि यूरोपीय काव्य में स्वामिभक्ति की प्रतिमूर्ति के रूप में आता है—भारतीय काव्य में प्रायः अत्यन्त दुष्ट और नीच पशु के रूप में दिखाया गया है।..... रूसी और भारतीय साहित्य में केवल थोड़े से पशु चित्र-विधान में एक दूसरे के निकट हैं—जैसे खरगोश, हिरण, शृगाल, बाज और निर्मल हंस।" गाय के सीधे और भोलेपन से महिला के सीधेपन और भोलेपन की तुलना की जाती है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत में स्त्री को गाय के समान पशु समझा जाता है। भारतीय साहित्य में मरखनी गाय का भी वर्णन प्राप्त होता है और इसी प्रकार यह भी लिखा हुआ है कि सींगवाले पशुओं का विश्वास नहीं करना चाहिए। "नखीनां शृंगिणां तथा। विश्वासो नैव कर्तव्यः।" इसी प्रकार कुत्ते को भी "एक मात्र दुष्ट पशु ही भारतीय साहित्य में नहीं समझा गया है। पाँचों पाण्डवों के स्वर्गारोहण के समय कुत्ता उनके साथ था जिसे कि युधिष्ठिर ने "साक्षात् धर्म का रूप" कहा है और जिसे छोड़ कर वे स्वर्ग में भी जाना नहीं चाहते। इसी प्रकार कबीर ने अपने आप को "राम की कुतिया" कहा है। "कबीर कुतिया राम की, मुतिया मेरा नाँव।" साहित्य में उपमा आदि को देख कर यदि उससे किसी देश के पूर्ण रीति रिवाजों का अध्ययन किया जाए—तो वह चाहे कितना ही मनोरंजक क्यों न प्रतीत हो—बहुत अनर्थकारी सिद्ध हो सकता है। श्रीयुत वरान्नीकोव 'मधुकर' के विषय में लिखते हैं : "मधुकर भारतीय काव्य की प्राचीन सम्पत्ति है।.. मधुकर के उल्लेख के बिना वन, वृक्ष

या उद्यान का वर्णन पूर्णतया असम्भव है।" इसी प्रकार वे लिखते हैं : "भारतीय काव्य में सब से प्रिय चित्र प्रतीत होता है—मुख-पूर्णचन्द्र। तुलसीदास द्वारा यह जितना स्त्री के लिए प्रयुक्त हुआ है उतना ही वह पुरुष के चेहरे के लिए भी।"

"साहब" शब्द तुलसीदास से पूर्व ही हिन्दी-साहित्य में भगवान् के लिए प्रयुक्त होने लगा था। कबीर और अन्य कवियों ने 'साहब' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है। तुलसीदास के समय तक "साहब" शब्द अरबी नहीं रह गया था-वह पूर्णतया भारतीय हो गया था और उसके अर्थ भी भारतीय हो गए थे यद्यपि यह सत्य है कि यह शब्द मूल रूप में अरबी का है। अरबी का शब्द होते हुए भी जब इसके साथ भारतीय सम्बन्ध स्थापित हो गए और इसके अर्थ भारतीय हो गए तो यह शब्द भी भारतीय बन गया। इसी कारण तुलसीदास ने इस शब्द के आगे 'सु' और "कु" लगाकर "सुसाहब" और "कुसाहब" तक बना दिया। इस "साहब" शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में श्रीयुत वरान्नीकोव लिखते हैं :... "स्वयं राम को जिन्हें तुलसीदास विश्व का सर्वोच्च शासक चित्रित करते हैं और जिन्हें वेद "दैवी तत्व" कहते हैं, उनको तुलसीदास भारत में अत्यन्त व्यापक अरबी शब्द 'साहब' के नाम से सम्बोधित करते हैं।...यह शब्द बाद में आकस्मिक रूप से जोड़ा हुआ नहीं है। यह इस तथ्य से प्रतीत होता है कि सिक्ख समाज...अपनी एक मात्र पवित्र पुस्तक को 'ग्रन्थ साहब' के नाम से कहता है।"

श्रीयुत वरान्नीकोव ने तुलसीदास की 'रामायण' का अध्ययन एक विशेष दृष्टिकोण से किया है। किसी भी महान् रचना का अध्ययन किसी एक विशेष दृष्टिकोण तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार महान् पुरुषों की प्रतिभा बहुमुखी होती है और उनका व्यक्तित्व भी विस्तृत होता है-उसी प्रकार उनकी रचनाएँ भी विस्तृत और भिन्न पहलुओं की होती हैं। श्री वरान्नीकोव ने 'रामायण' का अनुवाद किस प्रकार किया है उसके सम्बन्ध में उन्होंने एक निबन्ध लिखा है। वरान्नीकोव के इन निबन्धों की प्रशंसा करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम उनके इस पुस्तक में अभिव्यक्त प्रत्येक विचार से सहमत हों। आशा है कि उनकी यह पुस्तक हिन्दी-जगत् में उन्हीं भावनाओं से पढ़ी जाएगी जिनसे प्रेरित होकर कि यह लिखी गई है।

विचार-तरंग (जीवन और जगत् सम्बन्धी स्फुट लेख)

लेखक : प्रो० दीवानचन्द शर्मा

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज,
दिल्ली

मूल्य : २.५०

श्रीयुत प्रो० दीवानचन्द ने "इस पुस्तक में अनेक घटनाओं और व्यक्तियों के प्रति अपने भाव और विचार प्रकट किए हैं।" इन विचारों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं : 'ये विचार मेरे निजी हैं और इनको मैंने 'स्वान्तः सुखाय' लिखा है। आशा है कि जो आनन्द मैंने इन्हें लिख कर पाया है, वही आनन्द पाठक भी इन्हें पढ़ कर पाएँगे' हमें इन निबन्धों को पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। लेखक के न केवल 'विचार' निजी हैं अपितु उनकी लिखने की शैली भी 'निजी' है। उनकी शैली में सबसे आकर्षक वस्तु—उनकी स्वाभाविकता और सरलता है। साहित्यकार जब कलाकार बनता है तो वह चाहे कृत्रिमता से बचने की हजार कोशिश करे—कहीं-न-कहीं उसमें कृत्रिमता आ ही जाती है। आर्ट का तात्पर्य ही बनाना है इसलिए इस बनाने में बनावट से सर्वथा बच निकलना कठिन है। जो साहित्यकार अपनी रचनाओं में जितना ही अधिक स्वाभाविक और अकृत्रिम होता है—उसकी रचना उतनी ही अधिक सजीव होती है और उसमें उतनी ही अधिक ताजगी होती है। श्रीयुत दीवानचन्द के इन लेखों में आश्चर्यजनक सरलता और अकृत्रिमता है और इस कारण उनमें सप्राणता और ताजगी है। इन लेखों में जीवन और जगत् की प्रति दिन की सरल और स्वाभाविक घटनाओं को उनके सरल और स्वाभाविक रूप में लिखा गया है। इन घटनाओं में जो कुछ विशेषता है वह उनकी अनुभूति की है; उसके पर्यवेक्षण की है और लेखक की संवेदनाशीलता की है और इन्हीं के कारण इन लेखों में लेखक के व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप से अनुभव होता है और इन्हें पढ़ने में आनन्द की अनुभूति होती है।

इन लेखों को हम 'निबन्ध' कह सकते हैं क्योंकि इन्हें इसी शैली में लिखा गया है। श्रीयुत दीवानचन्द शर्मा ने अंग्रेजी के साहित्य का इस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्मता और गहराई से अध्ययन किया है कि वह उनकी प्रकृति का

एक अभिन्न अंग बन गया है। उनके पास इस अध्ययन की ऐसी महान् निधि है जो कि कभी समाप्त होती हुई नहीं प्रतीत होती इतने पर भी उन के इस समस्त अध्ययन के बीच में से उनका अपना अछूता व्यक्तित्व है जिसका कि इन लेखों को पढ़ने में स्पष्टतया अनुभव किया जा सकता है। पुस्तक के नीचे फुट-नोटों में स्थान-स्थान पर आवश्यक संदर्भ दिए गए हैं। इसमें लेखक के २० निबन्धों का संग्रह है। कई निबन्धों में उनके अनेक संवीक्षण, रिमार्क और उक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक हैं। इन समस्त निबन्धों में हमें सब से बड़ी विशेषता यह प्रतीत हुई कि उन्होंने कोई भी बात न तो किसी प्रकार बन कर या बना कर कही है और इसीलिए ये निबन्ध पढ़ने में अत्यन्त हलके-फुलके प्रतीत होते हैं—यद्यपि वे अत्यन्त गम्भीर हैं। सूक्ष्म और गम्भीर बातों को इस प्रकार कहना कि केवल वे रहस्यपूर्ण और भारी-भरकम न प्रतीत हों हलकी-फुलकी और साधारणतया बोधगम्य हों, बहुत कठिन है। यही कारण है कि लेखक इन निबन्धों को पढ़नेवालों के साथ सुगमता के साथ एकात्मता स्थापित कर लेता है और इसी एकात्मता के कारण इन निबन्धों में सरसता और आनन्द का अनुभव होता है। लेखक न केवल अपने पाठकों का विश्वास प्राप्त कर लेता है अपितु वह उनके साथ एक ऐसी आत्मीयता स्थापित कर लेता है कि वे उसकी बातों को उसीके समान यदि प्रत्यक्ष नहीं करते तो अनुभव अवश्य करते हैं। ये निबन्ध कहीं स्केच, वर्णन, आदि रूपों में लिखे गए हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इन निबन्धों का हिन्दी-संसार में समुचित आदर होगा और इन्हें एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

गीली मट्टी (कहानियाँ और स्केच)

लेखक : अमृतराय
प्रकाशक : हंस प्रकाशन
मूल्य : ३.००

पुस्तक का नाम पुस्तक की अन्तिम कहानी के आधार पर रखा गया है। इस 'गीली मिट्टी' के सम्बन्ध में वे कहते हैं : "……मुझे लगता है कि जैसे कभी आग के एक ही गोले में छिटक कर यह सारी सृष्टि बनी थी वैसे ही किसी कुम्हार ने गीली मिट्टी के एक ही गोले से सब ईमानों के दिल भी बनाए थे और उनका साज कुछ इस तरह मिला कर रख दिया था कि एक का दर्द दूसरे के सीने में जाकर बजने लगता है।" अपनी इन कहानियों और स्केचों के विषय में लेखक अपने 'निवेदन' में लिखते हैं : '…जिन्दगी हर जगह एक-सी है और निगाह हो तो लिखनेवाले को कथा-बीज सब जगह मिल जाते हैं।…ये आपकी जानी-पहचानी दुनिया की जानी-पहचानी कहानियाँ हैं लेकिन इनमें एक निगाह मेरी है इसलिए मुमकिन है आप को इनमें कुछ नयापन मिले—बस इतना कि हाँ देखा तो था—लेकिन ऐसे नहीं देखा था।'

हमने इन कहानियों में लेखक की 'निगाह' को देखने का प्रयत्न किया। इसमें सन्देह नहीं है कि लेखक की अपनी निगाह है और वह निगाह दूर तक और गहराई से देखती है और इसी कारण उसके लिखने में यदि नयापन नहीं है तो भी उसमें एक अपनापन अवश्य है। अंग्रेजी के लेखक रस्किन ने अपने निबन्धों में एक स्थान पर लिखा है : "The greatest thing a human soul ever does is to see some thing and to tell what it saw in a plain way"—मनुष्य जो सबसे बड़ी वस्तु कर सकता है वह यह है कि वह किसी वस्तु को देखे और उसे सरल भाषा में अभिव्यक्त कर दे।' इसमें बहुत-सी कहानियाँ इस प्रकार की है जिनकी 'दुनिया ही केवल जानी-पहचानी' हुई नहीं है—जिस 'निगाह' से वे देखी गई हैं—वह भी बहुत कुछ 'जानी-पहचानी' हुई है; उसके चरित्र और पात्र बहुत कुछ जाने-पहचाने हुए हैं और उसका दृष्टिकोण भी बहुत कुछ 'जाना-पहचाना' हुआ है। यद्यपि यह विश्व विभिन्नता से पूर्ण है परन्तु लेखक की 'निगाह' तटस्थ होकर विश्व की इन समस्त विभिन्नताओं को नहीं देखती क्योंकि वह उसकी पहले से ही 'जानी-पहचानी' है. उसके लिए उसकी रहस्यमयता या अन-जानापन नष्ट हो चुका है और इसलिए वह इन सब वस्तुओं को अपने ही एक विशेष दृष्टिकोण से देखता है और इसी दृष्टिकोण को वह 'साहित्यकार का सामाजिक दायित्व और साहित्य की सोद्देश्यता' समझता है। समस्त विश्व को एक विशेष दृष्टिकोण से देखना--समस्त विश्व को अपनी छोटी आँखों तक छोटा करना और सीमित करना है और इस प्रकार से साहित्य में एकांगीपन आ

जाता है और जब यह 'एकांगीपन' आवश्यकता से अधिक हो जाता है तो समस्त साहित्यिक विशेषताओं के होते हुए भी वह अपनी विशेषता को खो बैठता है। मनुष्य का चरित्र ऊपर से एक जैसा होता हुआ भी आन्तरिक दृष्टि से अनेक प्रकार का होता है। मानव-जीवन का अध्ययन भी किसी प्रकार का विशिष्ट 'लेबल' लगाकर नहीं किया जा सकता। इसमें अनेक प्रकार का परस्पर विरोध होता है। और वह विरोध केवल निम्न स्तर के व्यक्तियों में ही नहीं, उच्च से उच्च स्तर के व्यक्तियों में भी होता है। हमने इस पुस्तक की कहानियों को शौक से पढ़ा। इनको पढ़ते हुए सबसे मुख्य वस्तु हमें जो अनुभव होती है वह यह है कि जहां लेखक इस बात के सम्बन्ध में पूर्णतया अभिज्ञ है कि उसे अपनी कहानी या स्केच को किस क्षेत्र से चुनना है और किस साँचे में ढालना है और उसमें किस तत्व का प्रदर्शन करना है वहां पाठक भी कहानीकार के ढाँचों और साँचों से शीघ्र ही इतना अधिक परिचित हो जाता है कि उनमें उसकी संवेदनशीलता में जिस प्रकार की तीव्रता आनी चाहिए— वह नहीं आ पाती और उसका कौतूहल—जो कि किसी कहानी का सबसे बड़ा आकर्षण है—यदि पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता—तो मात्रा में बहुत अधिक कम हो जाता है। कहानीकार की दृष्टि बहुत कुछ मशीन की तरह है और वह कहानियों की रचना भी बहुत कुछ मशीन की तरह ही करता है। इसलिए उसके स्केचों और कहानियों में मशीन की वस्तुओं के समान पालिश और आकर्षण अवश्य है—परन्तु वह सूक्ष्म संवेदनशीलता नहीं है जो कि जीवन का विभिन्न रूपों में अनुभव करती है। कई कहानियों को पढ़ने से ऐसा अनुभव होता है कि जैसे हम इन कहानियों को पहले पढ़ चुके हैं—यद्यपि हम उन्हें पहली बार ही पढ़ रहे होते हैं।

ललित-कुँज,
गगन महल कॉलोनी, —वंशीधर विद्यालंकार
हैदराबाद-१

राष्ट्रपति और राष्ट्रपति भवन
लेखक : वाल्मिकी चौधरी
प्रकाशक : आत्माराम एन्ड सन्स
मूल्य : ६.००

हमारे गणराज्य के राष्ट्रपति, उनके अधिकार, संविधान में उनका महत्व, वर्तमान राष्ट्रपति की जीवन प्रणाली आदि विषय सम्बन्धी लेखों का इस पुस्तक में समावेश किया गया है। हमारा संविधान १९५० की २६ वी जनवरी के दिन लागू हुआ। साधारण निर्वाचन के बाद १९५२ में वर्तमान राष्ट्रपति का चुनाव हुआ। उसके बाद १९५७ में उनका पुनः निर्वाचन हुआ। लेखक ने अपने निवेदन लिखा है : "इस दिन से निरन्तर सात वर्ष तक राष्ट्रपति-भवन में रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यों तो विश्व-विभूति राजेन्द्र बाबू की सेवा में रहने का सौभाग्य मुझे केवल पिछले सात वर्षों से ही नहीं, बल्कि उसके पहले भी उनके भिन्न भिन्न पदों पर रहते समय १९५० से ही प्राप्त है।" इन कारणों से लेखक अपने विषय और हमारे राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के जीवन और प्रतिभा के बारे में लिखने के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। मालूम होता है लेखक को इस सम्बन्ध में जो सम्पूर्ण तथ्य प्राप्त हुए हैं, श्रीयुत चौधरी ने उन्हीं तथ्यों का इस पुस्तक में उल्लेख किया है। पुस्तक में पन्द्रह लेख हैं। पहले दो में यह बताया गया है कि वॉयसराय हाउस का भारतीय राष्ट्रपति के भवन में किस प्रकार परिवर्तन हुआ है और इस भवन की क्या विशेषताएं हैं। किस प्रकार भारतीय संस्कृति का विभिन्न रूपों में राष्ट्रपति भवन में प्रतिनिधित्व किया गया है; किस प्रकार भारतीय कला कुटीर-शिल्प की सामग्रियों से यह भवन सजाया गया है। राष्ट्रपति के अधिकार, दिन-चर्या उनका चुनाव और शपथ ग्रहण की पद्धति और राष्ट्रपति भवन की प्रशासन प्रणाली आदि अन्य कई विषयों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रपति की धर्मपत्नी श्रीमती राजवंशी देवी के बारे में भी एक रोचक लेख है। लेखक के अन्य विषयों में राष्ट्रपति के अंग-रक्षक, स्वागत सलामी समारोह, राष्ट्रपति झण्डा और हाथी, उदयगिरि आदि सम्मिलित हैं।

पुस्तक में ऐसी बहुत-सी बातें और तथ्य हैं जो संभवतः साधारण जनता के लिए नवीन होंगी। लेखक की भाषा सरल और लिखने का ढंग रोचक है। यह पुस्तक लाइब्रेरियों के लिए उपयुक्त है। इस प्रकार की पुस्तकों में परिशिष्ट की अत्यन्त आवश्यकता है।

दिल्ली —शारदा बरुआ

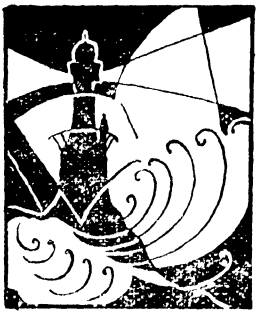

सामयिक

॥

कम्बन : तमिल का सर्वश्रेष्ठ कवि

तमिल साहित्य में कम्बन का और उनकी 'रामायण' का एक विशिष्ट स्थान है। कम्बन के सम्बन्ध में श्रीयुत वी आचार्य का मद्रास के अंग्रेजी पत्र 'हिन्दु' में एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

'हम अभी तक निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि कम्बन कौन थे? हम न तो उनकी माता का नाम जानते हैं और न पत्नी का। उनके पिता और पुत्र के सम्बन्ध में परम्परागत कुछ विवरण प्राप्त होते हैं—परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वे कहाँ तक सत्य हैं। विद्वानों में अभी तक इस सम्बन्ध में वाद-विवाद चल रहा है कि उनका समय ९ वीं शताब्दी है या १२ वीं। उनके जीवन के सम्बन्ध में किसी वृत्तान्त के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान प्राप्त कर सकना इस समय किसी प्रकार सम्भव प्रतीत नहीं होता। यदि थिरावजुन्दुर में 'कम्बन मेधु' की समाधि कम्बन और उनके पास ही अवास्थत सदैयप्पन की समाधि का पुरातत्व सम्बन्धी अनुसन्धान किया जाए तो सम्भवतः उनके जीवन और समय पर शायद कुछ प्रकाश पड़ सकेगा। सत्य तो यह है कि कम्बन कालरहित और युगरहित हैं।

समस्त तमिल साहित्य में कम्बन को तमिल का सबसे महान् कवि समझा जाता है। कम्बन की 'रामायण' एक विशाल रचना है। इसमें ४०,००० पंक्तियाँ हैं। तमिल में कई अन्य रचनाएँ भी हैं जो कि उनके नाम से प्रसिद्ध हैं परन्तु विद्वानों को उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह है।

कम्बन अपनी 'रामायण' का नाम 'रामावतारम्' रखना चाहते थे। उनकी यह रचना वाल्मीकि की 'रामायण' पर आधारित अवश्य है परन्तु उन्होंने, इसको परिष्कृत करने का प्रयत्न किया है। कम्बन की 'रामायण' वाल्मीकि की 'रामायण' का अनुवाद नहीं है और न ही अन्धानुकरण।

कम्बन ने अपनी 'रामायण' की कथा में जहाँ कहीं परिवर्तन किए हैं, वहाँ उसमें कई नवीन तत्त्वों का भी समावेश किया है। कम्बन की 'रामायण की सबसे महान् विशेषता यह है कि उन्होंने मूलतः उत्तर की एक महान् कविता को अपनी देशिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अपनी विशिष्ट प्रतिभा से दक्षिण की एक महान् कविता बना दिया है। मूल रचना के समान उनकी 'रामायण' में भी अन्तरतम और विभिन्न मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई है। उनकी भाषा में ऐसी असाधारण सुन्दरता और शक्ति है कि हम उनकी भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप में देख सकते हैं। कम्बन दक्षिण देश की प्रतिभा के प्रतिनिधि हैं और इसके साथ ही हम उनमें भारतीय संस्कृति की एकता के दर्शन भी कर सकते हैं। कम्बन की 'रामायण' में हिन्दू धर्म की परम्परा, दर्शन, और संस्कृति की व्याख्या प्राप्त होती है। यद्यपि कम्बन राम को विष्णु का अवतार समझते हैं—परन्तु उनमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं है।

एक दृष्टि से कम्बन की 'रामायण' में नवीनता और विद्रोह है। उन्होंने तमिल में ऐसे छन्दों का प्रयोग किया है जो कि संस्कृत पर आधारित हैं। तमिल में इस प्रकार के छन्दो का प्रयोग नहीं होता था। उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत, तेलुगु और कन्नड़ के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। यद्यपि तमिल-भाषा-भाषी उनके नाम से सुपरिचित हैं तो भी उनका नाम अभी तक प्रत्येक की जबान पर नहीं है। भारतवर्ष की अधिकांश जनता कम्बन के नाम से परिचित नहीं है। कुछ दिन हुए मद्रास में कम्बन की हस्तलिखित पुस्तकों की एक प्रदर्शिनी की गई थी। इस प्रदर्शिनी का उद्देश्य यह था कि लोगों को इस बात का पता लग जाए कि कम्बन के

सम्बन्ध में कितना कार्य हो चुका है और अभी उनके सम्बन्ध में कितना कार्य और किया जाना चाहिए।

कम्बन की 'रामायण' का यूरोपीय और भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जाना चाहिए जिससे उनको विश्व के कवियों में समुचित स्थान प्राप्त हो सके। इन अनुवादों में हमको अंग्रेजी और हिन्दी को प्राथमिकता देनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सब कार्य मद्रास से किया जाना चाहिए यद्यपि अन्त में थिराजुन्दूर को ही वह महत्व प्राप्त होना चाहिए जो कि कम्बन ने उसे प्रदान किया था। कम्बन के सम्बन्ध में हमें संग्रहालय को भी मद्रास में ही रखना पड़ेगा क्योंकि उसके लिए यही उपयुक्त स्थान हो सकता है। कम्बन के सम्बन्ध में प्रतिवर्ष एक गोष्ठी थिराजुन्दूर में किया जाना चाहिए; इस गोष्ठी में कवि के जीवन और रचना, उसका समय, प्रेरणा के स्त्रोत और उन पुस्तकों के सम्बन्ध में जिनमें कि कम्बन के सम्बन्ध में उद्धरण प्राप्त होते हैं आदि पर गम्भीरता पूर्वक अनुसन्धानात्मक विचार और कार्य किया जाना चाहिए।

यद्यपि कुम्बन की 'रामायण' कविता में है तो भी यह नाटकीय घटनाओं से परिपूर्ण है। केरल और कन्याकुमारी में कम्बन की रामायण-कथा को नृत्य और संगीत में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया गया है। कम्बन के सम्बन्ध में जो स्मारक बनाया जाएगा वह भारतीय प्रतिभा और भारतीय एकता का स्मारक होगा।"

॥

लेखक बनने से पूर्व

लेखक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में से आते हैं। लेखक बनने से पूर्व कई लेखक कई प्रकार के छोटे धन्धे करते हैं। इस सम्बन्ध में एक लेख श्रीयुत डेविड गनस्टन ने लिखा है। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"..........यह बात प्रायः सर्व-विदित है कि शेक्सपियर एक अभिनयकार था और बनियन घूम-फिर कर बरतनों को टाँके लगाया करता था। डिकन्स कभी अपने पहले कार्य को नहीं भूला। वह एक फ़ैक्टरी में कार्य करता था; हावर्ड स्प्रिंग साहित्य में प्रवेश करने से पूर्व पत्र-वाहक का कार्य करता था। बर्नार्ड शा ने अपने सम्बन्ध में लिखा है कि वह आयर्लैण्ड में एस्टेट एजेण्ट के कार्यालय में एक क्लर्क था; टी. सी. इलियट एक बैंक में कार्य करता था; श्रीयुत आर. सी. शेरिफ़ ने कुछ वर्ष एक बीमे के दफ्तर में व्यतीत किए थे और ए. ई. कौपर्ड ने भी यह स्वीकार किया है कि क्लर्क बन कर उसने अपनी जीविका का उपार्जन किया था। ब्यूमाम और आर्नोल्ड बेनेट ने भी क्लर्क का कार्य किया था; स्विनटर्न भी एक दफ्तर में कार्य करता था, यद्यपि यह सत्य है कि वह एक प्रकाशन के दफ्तर में कार्य करता था। चार्ल्स लैम्ब, ट्रोलोप, ए. ई. हाउसमैन, लारेन्स बिनियन, डब्ल्यू. डब्ल्यू. जैकब्स, हम्बर्ट, वुल्फ़े, सी ई. एम जोड और रिचर्ड चर्च—ये सब लेखक बनने से पूर्व सरकारी नौकरी में थे।

अनेक साहित्यकार लेखक बनने से पूर्व अध्यापन का कार्य करते थे। गोल्ड स्मिथ और लारेन्स से लेकर ऑडन और स्टीफ़्न तक सभी लेखक अध्यापक थे। ब्लाइटन को यदि बाल-साहित्य में सफलता प्राप्त हुई तो उसका मुख्य कारण यह था कि उसने अपना प्रारम्भिक जीवन एक अध्यापक के रूप में व्यतीत किया था। जॉन कूपर पौवीस लेखक बनने से पूर्व एक अध्यापक था। कई लेखक पत्रकार और समीक्षक थे।

डाक्टरी का पेशा करने वाले कई व्यक्ति बाद में लेखक बन गए। ए. जी कोनिन, रौबर्ट ब्रिजेस, सॉमरसेट मोम, जेम्स ब्रिडी, फ्रान्सिस ब्रेट यंग, एच. डी वेरे स्टैकपूल और कोनन डौइल आदि सब डाक्टरी का काम करते थे। कई पादरी भी बाद में साहित्यकार बन गए। स्विफ़्ट, ल्यूइस करोल, चार्ल्स किंग्सली, एंड्रू लैंग, जार्ज ए. बिरमिंघम आदि लेखक पादरी थे। कई साहित्यकार लेखक बनने से पूर्व वकालत का कार्य करते थे। थैकरे, रौबर्ट लूई स्टीवन्सन और फ़िलिप गुएडला ये सब वकील थे।

कानरेड और जौन मैसफ़ील्ड दोनों नाविक थे और टी. ई. लॉरेन्स और इयान हे मिलिटरी के आदमी थे। बहुत से साहित्यकार लेखक बनने से पूर्व कृषक का कार्य करते थे। जैक लन्दन, डेवीस, जिम-फैलन, ए. जी. स्ट्रीट-लेखक बनने से पूर्व किसान थे और ए. जी. स्ट्रीट तो अब भी एक किसान है। फ्रेड किचन ने अपना अधिकांश जीवन फ़ार्म के एक मज़दूर के रूप में व्यतीत किया था। थामस हार्डी का शिक्षण एक शिल्पी के रूप में हुआ था और डेविड गार्नेट का एक वनस्पति-शास्त्री के रूप में।

थौमस मैन और वाल्टर डी. ला. मेअर प्रारम्भ में व्यापार में कार्य करते थे। ईदगर राइस जिसने कि "टारज़न" पुस्तक लिखी है शिकागो के एक स्टोर में कार्य करता था। अमेरिका के लेखकों की भी यही अवस्था है। जैफरे फारनोल थिएटर का सीन-पेण्टर था। उसे "दि ब्रौड हाइवे" पुस्तक में अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। इसके पश्चात् उसने साहित्यकार के पेशे को अपना बना लिया। कलाकार कठिनाई से साहित्यकार के पेशे को ग्रहण करते हैं और न संगीतकार ही। यही कारण है कि उन लोगों में से जिनमें संगीत की प्रतिभा और निपुणता होती है—बहुत कम लोग लेखक बनने का प्रयत्न करते हैं। इनमें से कुछ महिलाओं के नाम उल्लेखयोग्य हैं। कैथेराइन मेन्सफ़ील्ड और विको का प्रशिक्षण संगीत की जीवका के लिए हुआ था।

[illegible] विद्वान् और वैज्ञानिक भी साहित्यकार हैं। जी. [illegible] डिंग्टन, [illegible] टे गरे, लैन्सीलौट हौगबेन और [illegible] विज्ञानवेत्ता थे। कई गणितशास्त्री भी हैं और [illegible] साथ-साथ महान साहित्यकार भी हैं। ह्यूज [illegible] ऑक्सफोर्ड में गणित के प्रधान (Don) हैं।

सर्व-साधारण की सेवा करने वाले लोगों में से भी कई लेखक और साहित्यकार हैं। इनमें श्रीयुत विन्स्टन चर्चिल का नाम अग्रगण्य है परन्तु इस सम्बन्ध में हम श्रीयुत कनिंघम-ग्राहम, एम. पी और जॉन बूचन के नाम को भी नहीं भूल सकते। श्रीयुत ए. पी. हर्बट और गिलबर्ट मरे—आदि ने प्रशंसनीय लोक-सेवा की है। कूटनीतिज्ञों में से भी कई अच्छे साहित्यकार हैं।

हम उन व्यक्तियों को भी इस सम्बन्ध में नहीं भूल सकते जो कि धनी, समृद्ध और सम्भ्रान्त परिवारों में उत्पन्न हुए हैं और जिन्होंने साहित्य और लेखन-कला की चिरस्मरणीय सेवा की है। उन्होंने साहित्य की सेवा इसलिए नहीं की क्योंकि उन्हें अर्थाभाव था—या उन्हें धन के उपार्जन की आवश्यकता थी। यदि साहित्य के संसार में से श्रीयुत वी. सैक-विले-वेस्ट्स, औसबर्ट सिटवैल और वर्जिनिया वुल्फ़्स आदि के नामों को निकाल दिया जाए तो हमारा साहित्य-संसार निस्सन्देह श्रीविहीन और निर्धन हो जाएगा"

॥

अंग्रेज़ी में कैपिटल (बड़े) अक्षरों का भाग्य

अंग्रेज़ी में कई अक्षरों को कैपिटल (बड़े) रूप में लिखना पड़ता है। क्या आज की परिवर्तनशील अवस्थाओं में उन्हें 'कैपिटल' रूप में लिखा जाएगा। इस सम्बन्ध में श्रीयुत एस्. एस. कल्याणसुन्दरम् ने एक मनोरंजक लेख लिखा है। इस लेख से निम्न अंश दिया जा रहा है :

इस समय अंग्रेज़ी भाषा में अनेक नवीनताओं का प्रवेश हो रहा है। इसे 'प्रयोग' कहा जाए या 'दुष्प्रयोग'।

कुछ शताब्दी पूर्व प्रत्येक संज्ञा का प्रारम्भ कैपिटल अक्षर से किया जाता था। इसके पश्चात् उसका प्रयोग नामवाची संज्ञाओं के लिए और वाक्यों के प्रारम्भ में किया जाने लगा। जो पारिभाषिक शब्द व्यक्तिगत नामों के आधार पर बनाए गए थे उनमें कैपिटल अक्षरों का प्रयोग नहीं किया जाता था—यद्यपि इसके कुछ अपवाद थे। कब कैपिटल 'आई' को छोटी 'आई' में लिखा जाने लगेगा। आप इसको किस प्रकार तर्कसंगत कह सकते हैं कि "नए पैसा" में 'एन' तो छोटा है और "पी" बड़ा (कैपिटल) है—nP. और फिर क्या 'नया पैसा' नामवाची शब्द है? हम इस परिवर्तन को किसी भी प्रकार तर्कसंगत नहीं कह सकते। सचमुच nP का प्रयोग स्वेच्छाचारपूर्ण, अनुचित और भद्दा है।

अब तो कुछ ऐसा समय आ रहा है जब कि पेण्डुलम हमको दूसरी ओर ले जा रहा है; कुछ लोग कैपिटल अक्षरों के सर्वथा विरोधी हैं। मेरा तात्पर्य उन विज्ञापनदाताओं से नहीं है जो कि लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए 'बड़े' अक्षरों को "छोटे" अक्षरों के रूप में लिखते हैं। इन दिनों अनेक साहित्यिक और वैज्ञानिक पत्रिकाएं हैं जो नामवाची शब्दों को 'छोटे" अक्षरों में छापती हैं। कुछ प्रसिद्ध पत्रों के पास 'अपर-कलास' अक्षरों का अभाव है; वे अब Brahman के B को छोटे b में छापते हैं। वे जोरोस्ट्रिअन, कन्फूशियन, शिण्टो, शिया, रोमन कैथोलिक—आदि शब्दों के प्रारम्भिक अक्षरों को 'कैपिटल' नहीं छापते। अभी तक किंग और एम्परर आदि शब्दों को प्रारम्भ में बड़े अक्षरों से लिखा जाता है और 'वुड कटर' जैसे शब्दों का प्रारम्भ छोटे अक्षर से संभव है कि इस साम्यवादी युग में भाग्य का विपर्यय हो जाए और 'वुड कटर' का 'डब्ल्यू' कैपिटल में लिखा जाए और 'किंग' का 'के' छोटे अक्षरों में।"

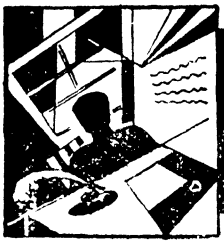

सम्पादकीय

अखिल भारतीय भाषा-सम्मेलन

समस्त भारतीय भाषाओं में, पारस्परिक निकट सम्बन्ध, विकास और आदान-प्रदान के लिए एक ऐसे सम्मेलन की आवश्यकता है जिसमें कि भारत की समस्त भाषाओं को एक समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। इस समय जितने भी सम्मेलन अखिल भारतीय स्तर पर होते हैं, उनका समस्त कार्य प्रायः अंग्रेजी के द्वारा किया जाता है। अखिल भारतीय लेखक संघ भी अपने सम्मेलन का कार्य अंग्रेजी में ही करता है। भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में जो सम्मेलन अखिल भारतीय स्तर पर किया जाए उसकी कार्यवाही मुख्यतया हिन्दी में करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस सम्मेलन में भारतीय भाषाओं के समस्त पहलुओं पर सम्मिलित और संगठित रूप से विचार किया जाना चाहिए। भारतीय भाषाओं की—साहित्य, विज्ञान, प्रशासन और अन्य क्षेत्रों में कितनी उन्नति और प्रगति हो रही है; भारतीय भाषाओं में किस प्रकार अधिकाधिक सामंजस्य और निकट सम्बन्धों की स्थापना हो; उनके पारस्परिक सौहार्द और आदान-प्रदान में सवर्धन हो; भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में समस्त भारतीय भाषाओं के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाए और एक भाषा के विद्वान् और साहित्यकार अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वानों और साहित्यकारों द्वारा सम्मानित किए जाएँ—इस सम्मेलन में इन समस्त विषयों पर गम्भीरता से न केवल इस प्रकार विचार किया जाना चाहिए जो कि प्लेटफार्म की सीमा तक ही समाप्त हो जाए—अपितु जिसको क्रियात्मक रूप में परिणत किया जा सके। इस प्रकार के सम्मेलन को साहित्यिक सांस्कृतिक और समन्वयात्मक दृष्टि से किया जाना चाहिए—राजनैतिक दृष्टि से नहीं।

इस सम्मेलन में समस्त भारतीय भाषाओं की पुस्तकों और पत्रिकाओं की प्रदर्शिनी का आयोजन किया जाना चाहिए। इस प्रदर्शिनी में जहाँ प्राचीन पुस्तकें हों, वहाँ इसमें नवीनतम पुस्तकें भी होनी चाहिएँ। प्रत्येक भाषा के साहित्य के सम्बन्ध में इस प्रकार की गोष्ठियों और सिम्पोजिअम आयोजित किए जाने चाहिएँ जिनसे अन्य भाषा-भाषियों को उनके सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त हो सके और समस्त भारतवर्ष में समस्त भारतीय भाषाओं के अध्ययन के प्रति उत्साह, रुचि और सम्मान उत्पन्न हो सके। इस समय भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों में विदेशी भाषाओं के अध्ययन का प्रबन्ध किया जा रहा है परन्तु भारतीय भाषाओं के अध्ययन के सम्बन्ध में कुछ विशेष सरगर्मी नहीं दिखाई देती। होना तो यह चाहिए कि भारतवर्ष की प्रत्येक यूनिवर्सिटी में जहाँ तक सम्भव हो—प्रत्येक भारतीय भाषा के अध्ययन का प्रबन्ध किया जाए। इस सम्मेलन के द्वारा इस दिशा में भी बहुत कुछ प्रयत्न किया जा सकता है।

हमारे देश की प्रत्येक भाषा की समस्याएँ लगभग एक जैसी ही हैं और इसीलिए एक भाषा की उन्नति के साथ दूसरी भाषाओं की उन्नति का भावष्य भी बहुत कुछ जुड़ा हुआ है। समय आ गया है जब कि हमें अपनी भाषाओं के साहित्य के सम्बन्ध में सम्मिलित और संगठित रूप से न केवल विचार करना चाहिए अपितु निर्माणात्मक ठोस कार्य करना चाहिए। इस समय भारतवर्ष की प्रत्येक स्टेट की अपनी भाषा के तो कई सम्मेलन हैं परन्तु अभी तक एक भी ऐसा सम्मेलन नहीं है जिसमें इन समस्त भाषाओं के प्रतिनिधि अपनी अपनी भाषाओं के सम्बन्ध में एक भारतीय के रूप में विचार कर सकें। यदि ये प्रतिनिधि हिन्दी में न बोल सकें तो उन्हें अपनी भाषा में बोलना चाहिए, जिसका हिन्दी में अनुवाद उसी समय भाषण के साथ साथ किया जा सकता है।

नवीन जाति-प्रथा

उर्दू के कवि हाली ने अपनी एक कविता में लिखा है : "पेशा समझे थे जिसे बन गई वह जात अपनी" किन्तु न केवल पेशा ही 'जात' के रूप में परिवर्तित हो जाता है, अपितु आजकल के विश्वविद्यालयों की उपाधियाँ भी किस प्रकार 'जाति' के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं इस पर प्रो. हाल्डेन ने अपने एक भाषण में

प्रकाश डाला है। जिसे हम 'क्वालिफिकेशन'—योग्यता कहते हैं वह एक 'जाति-बन्धन' से कम नहीं है। एक व्यक्ति के पास जिस विषय में उच्च उपाधियाँ हैं—वह एकमात्र उसी विषय का प्राध्यापक बन सकता है—मानो एक विषय में उपाधि प्राप्त करते ही उसका सम्बन्ध दूसरे विषयों से या तो छूट जाता है या इस प्रकार का नहीं होता कि एक व्यक्ति के लिए उसका कुछ विशेष महत्व हो। विश्व-विद्यालय का उद्देश्य विशेषत्व (Specialization) की इन उपाधियों को वितरित करना हो गया है। उपाधियाँ एकमात्र एक विषय का एक व्यक्ति पर 'लेबल' लगा देती हैं, और डिवीजन या श्रेणी उच्च और नीच के भावों को उत्पन्न कर देती हैं। जो व्यक्ति प्रथम श्रेणी में डिग्री प्राप्त करता है वह अपने को 'सुपीरियर' समझता है और जो तीसरी श्रेणी में उत्तीर्ण हो जाता है उसकी स्थिति अनुत्तीर्ण व्यक्ति से भी बदतर हो जाती है क्योंकि तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण एम. ए. को आजकल विश्वविद्यालय में प्राध्यापक-पद की नियुक्ति के योग्य ही नहीं समझा जाता। हमारे देश में डिग्रियोंका कुछ ऐसा आकर्षण है जो कि बहुत कुछ एक खब्त के रूप में परिवर्तित हो गया है। ज्ञान को उपार्जन करने के स्थान में डिग्रियों का उपार्जन ही हमारा मुख्य उद्देश्य बन गया है।

श्रीयुत प्रो. हाल्डेन ने अपने भाषण में कुछ बातें इस प्रकार की कही हैं जिनके ऊपर हमारे देश के शिक्षा-शास्त्रियों को गम्भीरता से विचार करना चाहिए। पहले उनका भाषण समाचार-पत्रों में अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रकाशित हुआ था। अब उन्होंने इसे विस्तृत रूप में पत्रों में प्रकाशित करवाया है। उन्होंने अपने इस भाषण में कहा: "विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के द्वारा प्राप्त मेरी योग्यता ग्रीक और लैटिन भाषाओं में इतिहास और दर्शन के विषयों के अध्ययन तक सीमित है। मेरे पास रिसर्च की कोई डिग्री नहीं है और मेरे पास विज्ञान के अध्ययन की भी कोई डिग्री नहीं है क्योंकि मैंने विज्ञान में किसी उच्च परीक्षा को उत्तीर्ण नहीं किया है। यदि भारतीय विश्वविद्यालयों की दृष्टि से देखा जाए तो मैं या तो ग्रीक और लैटिन भाषाओं को पढ़ाने का अधिकारी हूँ और या इतिहास और दर्शन को परन्तु मुझे विज्ञान के किसी विषय को पढ़ाने के योग्य नहीं समझा जा सकता। मुझसे अभी "स्टैटिस्टिक्स" के एक प्रोफेसर के सम्बन्ध में पूछा गया। इस सम्बन्ध में मैंने किसी का नाम भेजने से इनकार कर दिया क्योंकि इसके लिए रिचर्स की डिग्री की क़ैद थी और ऐसे व्यक्तियों का मिलना कठिन है जिनके पास यह डिग्री हो। मैं विश्व के अनेक स्टैटिस्टिक्स के विद्वानों को जानता हूँ परन्तु उनके पास इस सम्बन्ध में कोई उच्च डिग्री नहीं है। उन्होंने अपना ज्ञान निरन्तर अध्ययन और कार्य से प्राप्त किया है।...यह विषय तो नया है—परन्तु अन्य कई विषयों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। बहुत से इस प्रकार के विद्वान् हैं जो कि परीक्षा-द्वारा उत्तीर्ण विषयों से अतिरिक्त विषयों में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं।

भारतवर्ष में किसी कालेज या यूनिवर्सिटी में प्राध्यापक बनने के लिए उस विषय की ऊँची डिग्री की आवश्यकता है। मेरे एक मित्र को एक कालेज में अपनी मातृभाषा पढ़ाने की नियुक्ति के लिए इनकार कर दिया गया—क्योंकि उनके पास इस सम्बन्ध में कोई ऊँची डिग्री नहीं थी यद्यपि उन्होंने अपनी भाषा में महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्य किया था। यह सत्य है जिस व्यक्ति पर रसायनशास्त्री या भूगर्भशास्त्री का लेबल लग गया है—वह अपनी इस नवीन जाति को अपनी सन्तति को प्रदान नहीं कर सकता और न उसे एक इतिहास शास्त्री से अपनी लड़की का ब्याह करने में बाधा हो सकती है—परन्तु इसका यह परिणाम हो रहा है कि हमारी मानवीय सम्भावनाओं को हानि पहुँच रही है। मुझे से प्रायः कहा जाता है कि तुम विद्वान् तो हो परन्तु विज्ञानवेत्ता नहीं। अनेक योग्य व्यक्ति भारतीय विश्वविद्यालयों में 'अस्पृश्य' हैं।

पुरानी जाति-प्रथा में यह विशेषता थी कि एक धनी व्यापारी या ज़मीदार रुपया खर्च करके भी अपनी जाति का परिवर्तन नहीं कर सकता था—चाहे वह कितना ही पवित्र और चरित्रवान क्यों न हो। इस जाति-प्रथा में चाहे कुछ भी दोष रहे हों परन्तु उसको कम-से-कम धन से कोई सम्बन्ध नहीं था। नई जाति-प्रथा का जिसे कि विश्वविद्यालय इस समय प्रचलित कर रहे हैं—धन से सम्बन्ध है। मैं आशा करता हूँ कि इस जाति-प्रथा को तोड़ने का पूर्ण रूप से प्रयत्न किया जाएगा। कहीं ऐसा न हो कि प्राचीन जाति-प्रथा के समान इस नई जाति-प्रथा का भी भारतवर्ष पर पक्षा-घाती प्रभाव पड़ जाए।"